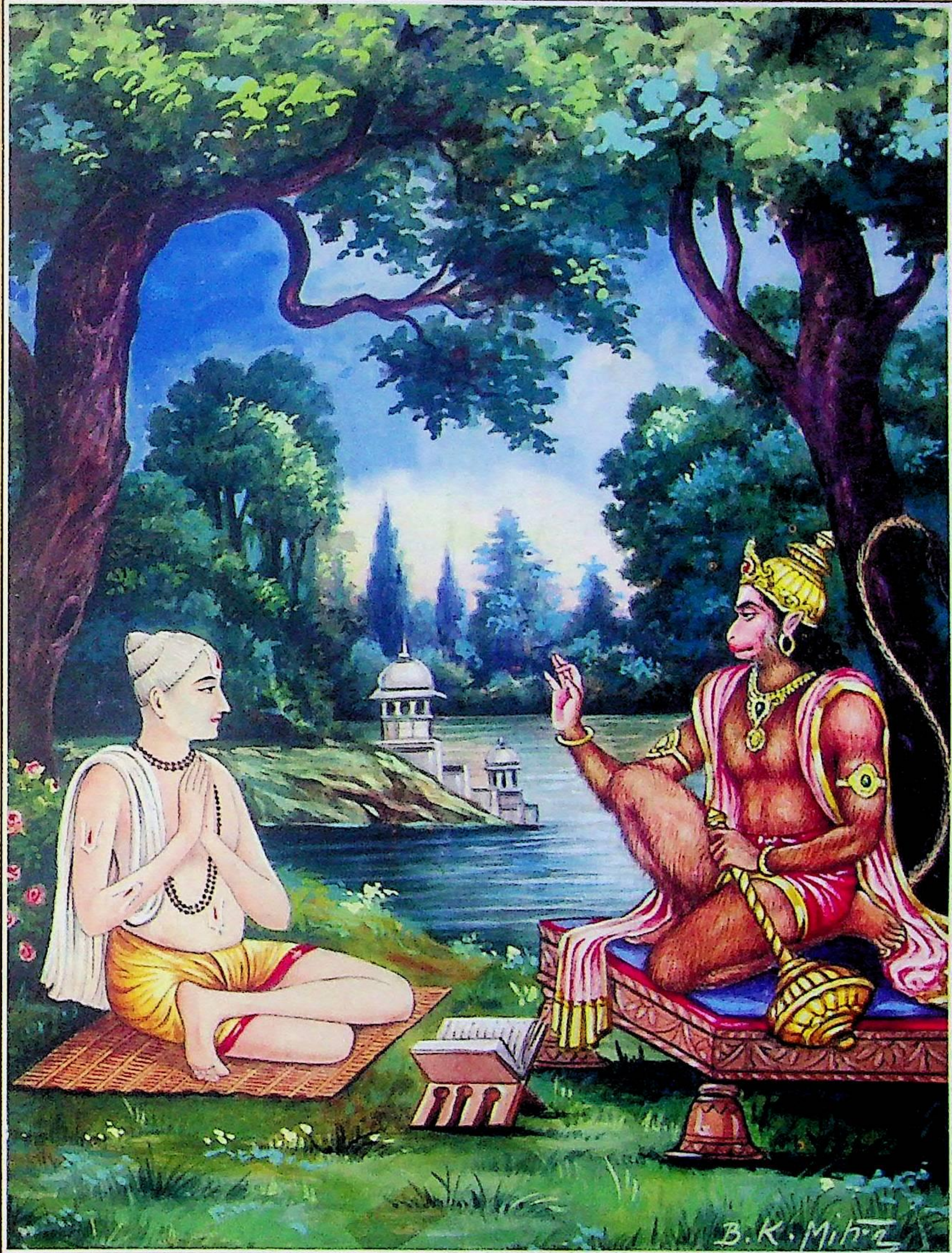
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

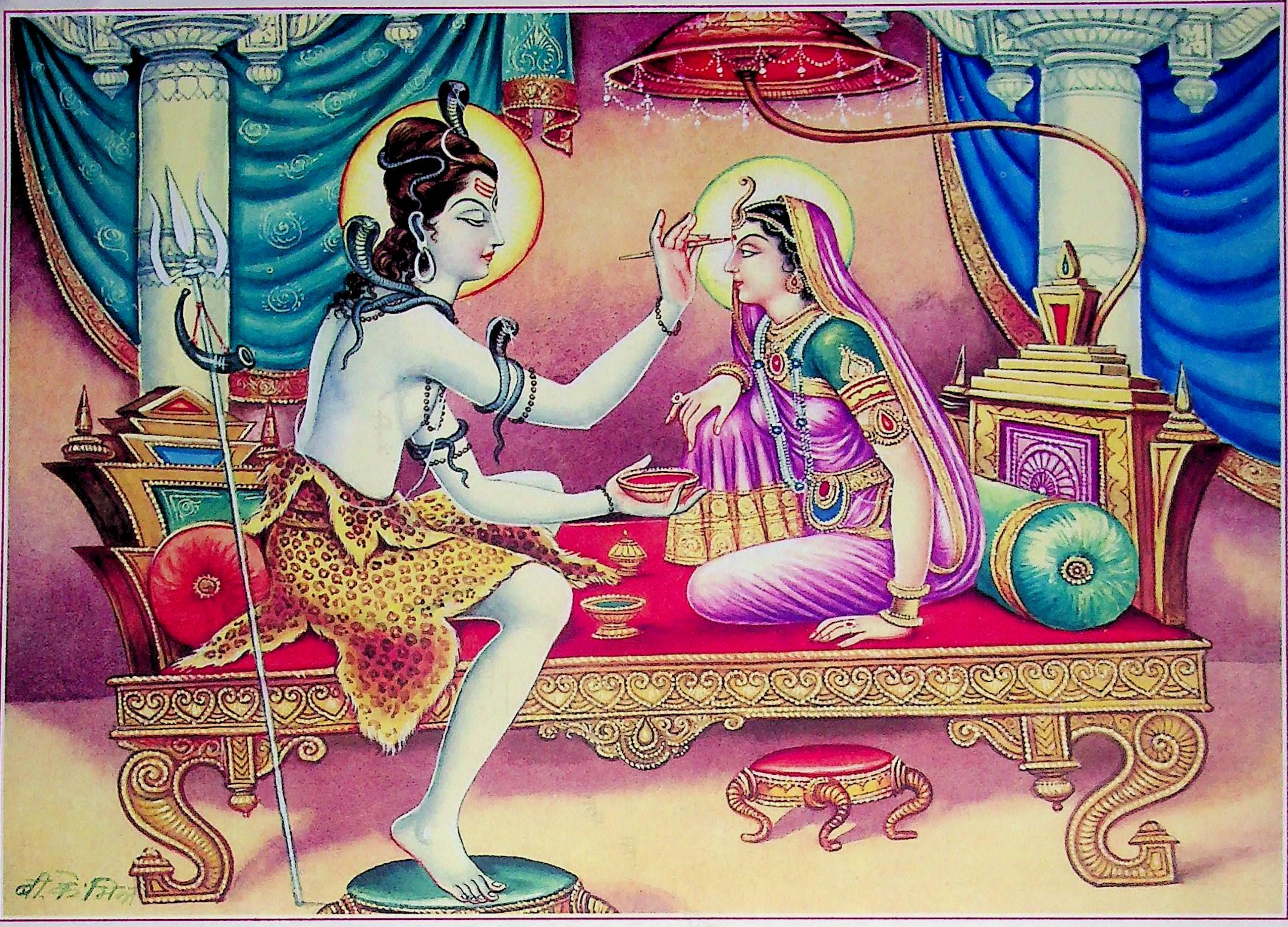
मूल्य ७ रुपये



वर्ष ८३

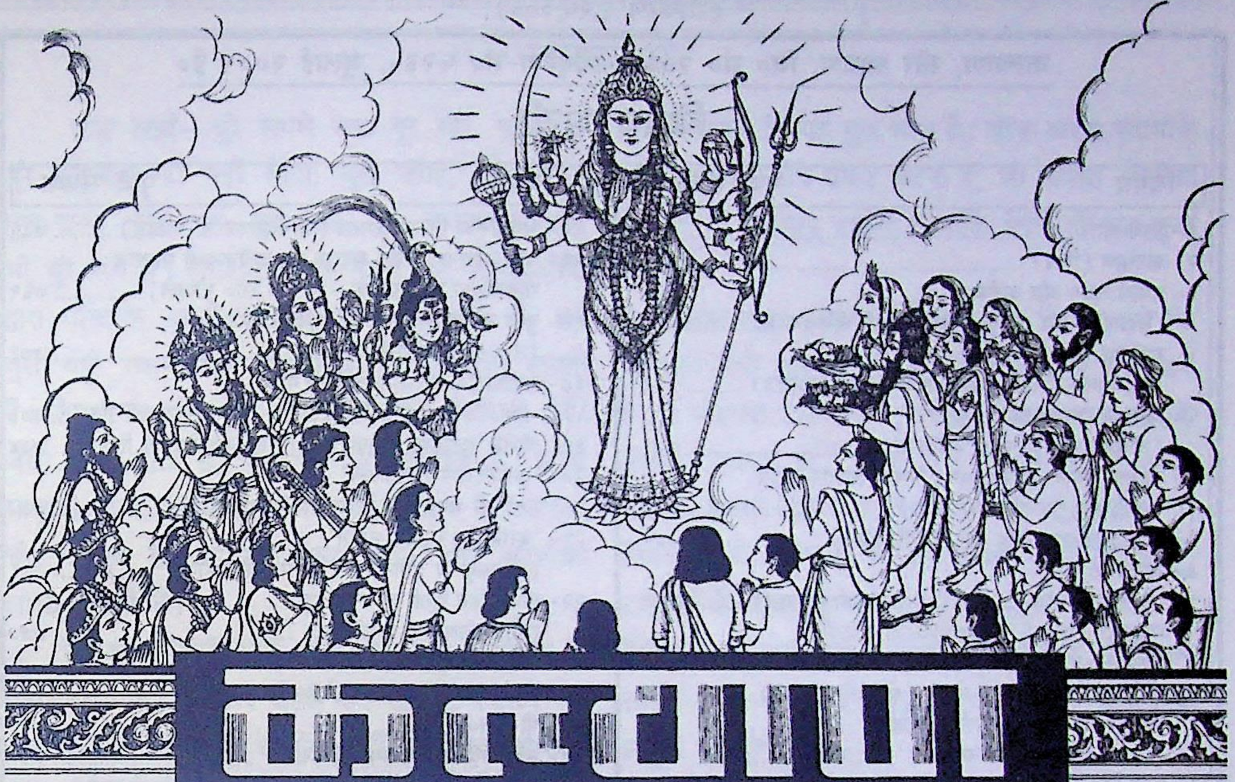
संख्या ७

गीताप्रेस, गोरखपुर



शिव-गौरी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः। दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः। विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥

वर्ष ८३ गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, जुलाई २००९ ई० संख्या ७
पूर्ण संख्या ९९२

शिव-गौरी

कालीसे गौरी हुई तजकर काली-चाम।
त्वक्से प्रकटी कौशिकी शक्ति-शौर्य-बल धाम॥
आ पहुँची देवी तुरत गौरी शिवके पास।
छायी परम प्रसन्नता शिव-मन परमोल्लास॥
गौरीका शिवने किया निज कर शुचि शृङ्गार।
लगा रहे अब भालपर वेंदी भव-भर्तार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, जुलाई २००९ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Rs.1250) (Sea Mail)
US$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पंचवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

कल्याण

याद रखो—बुरे संगसे सदा दूर रहो, बुरा संग बुरे मनुष्यका ही नहीं होता; बुरी जगह, बुरा अन्न, बुरा ग्रन्थ, बुरा दृश्य, बुरी बात, बुरा वातावरण आदि भी बुरे संग हैं। लगातारके बुरे संगसे बुरे परमाणुओंके द्वारा अन्दरके अच्छे परमाणु जब दब जाते हैं, तब बुरी बातें स्वाभाविक ही अच्छी मालूम होने लगती हैं। जैसा मन होता है, वैसी ही दृष्टि होती है और जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही दृश्य दीखता है। सच्चे साधुको प्राय: सभी साधु दिखायी पड़ते हैं, चोरको चोर दीखते हैं, कामीको सब कामी और लोभीको लोभी दीखते हैं।

बुरे वातावरणमें रहते-रहते चित्त बुरा हो जाता है, फिर उसमें बुरे संकल्प उठते हैं। जिसके चित्तमें बुरे संकल्प उठते हैं, उसके समान दु:खी तथा अपराधी और कौन होगा? क्योंकि वह अपने चित्तके बुरे संकल्पोंको जगत्‌में फैलाकर दूसरोंको भी बुरा बनाता है।

यह निश्चय करो कि मेरे चित्तमें कभी बुरी कल्पना नहीं आ सकती, मैं पवित्र हूँ, भगवान्‌की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया है, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌का अभय हाथ सदा मेरे सिरपर है। मैं उनकी छत्रछायामें हूँ। पाप-ताप मेरे पास नहीं आ सकते।

रोगकी अवस्थामें यह निश्चय करो कि बीमारी शरीरको है, मैं तो नित्य निरामय हूँ, मुझको कभी कोई रोग नहीं हो सकता। मैं सबका द्रष्टा हूँ। शरीर क्षणभंगुर है, नाशवान् है, किसी दिन नष्ट होगा ही। मैं अज हूँ, अविनाशी हूँ, अमर हूँ।

याद रखो—शोकके प्रसंगमें यह निश्चय करो कि मेरे लिये कभी शोकका प्रसंग नहीं आ सकता। प्रकृति जादूभरी है और परिवर्तनशील है, इसमें उपजने और नष्ट होनेका खेल सदा होता रहता ही है। रूप बदलता है, मूल वस्तु कभी नष्ट नहीं होती, फिर मैं शोक क्यों करूँ? अथवा यह निश्चय करो कि मेरे स्वामी भगवान् जो कुछ विधान करते हैं, उसीमें मेरा परम कल्याण है, यह ध्रुव सत्य है। शोक करना स्वामीके विधानपर असन्तोष प्रकट करना है, जो सर्वथा अनुचित है। वस्तुत: भगवान् हमारी भलाईके लिये ही सब कुछ करते हैं।

याद रखो—कामके प्रसंगपर यह विचार करो कि जगत्‌की सारी सुन्दरता मेरे प्रभुकी सुन्दरताका एक कण है। मैं मोहवश उस परम सुन्दरको छोड़कर हाड़-मांसके थैलेपर आसक्त हो रहा हूँ, यह अज्ञान है। मैं अपने प्रभुकी कृपासे इस अज्ञानके वश नहीं हो सकता। मैं निर्मल हूँ, मैं असंग हूँ, मेरे हृदयमें राम हैं, मैं रामका हूँ, राम मेरे हैं, राम मुझे अपना स्वरूप मानते हैं, अत: मेरे निकट काम नहीं आ सकता। मेरे रामकी सुन्दरताके सामने सारी सुन्दरताएँ तुच्छ हैं, सूर्यके सामने जुगनूके समान भी नहीं हैं।

याद रखो—क्रोधका अवसर आनेपर चुप रह जाओ और विचार करो जगत्‌में सब ओर भगवान्‌का विस्तार है। भगवान् ही विश्वरूपमें प्रकाशित हैं, मैं भगवान्‌पर क्रोध कैसे करूँ, उनका अपमान कैसे करूँ और निश्चय करो कि मैं क्रोधसे परे हूँ। मेरा हृदय नित्य क्षमासे पूर्ण है, सारे प्राणियोंके प्रति प्रेम, मैत्री, क्षमा और दया करना ही मेरा स्वभाव है। कठोर-से-कठोर वचन और व्यवहारको मैं सहर्ष सहन करूँगा। मेरे मनमें किसीके प्रति द्वेष नहीं है, इसलिये मैं क्रोधके वश कभी नहीं हो सकता।

लोभकी बात सामने आनेपर मनमें विचार करो और निश्चय करो कि मैं पूर्ण हूँ, मैं किसीका धन नहीं चाहता। मेरे लिये जगत्‌में लुभानेवाली वस्तु कोई भी नहीं है। मुझमें कोई कामना, आकांक्षा नहीं है; फिर किसी चीजके लिये मुझको लोभ कैसे हो सकता है?

याद रखो—मनमें भय, अशान्ति, उद्वेग और विषादको स्थान न दो। भगवान्‌की दया अथवा आत्माकी पवित्रता और नित्यतापर विश्वास रखकर सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहनेका यत्न करो। **'शिव'**

हमारा लक्ष्य और कर्तव्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। वह अपनेको श्रेष्ठ समझता है और विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌ने उसकी रचनामें विशेषता रखी भी है; परंतु वह वास्तवमें श्रेष्ठ तभी है, जब कि अपने जीवनके प्रधान लक्ष्यको ध्यानमें रखकर अपना कर्तव्यपालन करता है। आजके संसारकी ओर देखते हैं तो मालूम होता है कि लक्ष्यको जानकर कर्तव्यपालन करना तो दूर रहा, लक्ष्य और कर्तव्य क्या है, इस बातको भी प्राय: लोग नहीं जानते और न जानना चाहते ही हैं; पर दोनोंको जानना मनुष्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह शास्त्रोंसे, शास्त्रोंके वाक्य न समझमें आयें तो किन्हीं भगवत्प्राप्त पुरुषसे, वैसे पुरुष न मिलें तो धर्मके जानकार एवं धर्मका आचरण करनेवाले किसी धार्मिक पुरुषसे, वे भी न मिलें तो अपनी समझसे जो धर्मका जाननेवाला जान पड़े, उसीसे पूछकर अपने कर्तव्यको जान ले। कुछ भी न हो, तो कम-से-कम अपने अन्तरात्मासे तो पूछते ही रहना चाहिये। एक आदमी कहता है—'सत्य बोलना धर्म है', दूसरा कहता है—'धर्म-कर्म कुछ भी नहीं है।' ऐसी अवस्थामें अपने अन्तरात्मासे पूछना चाहिये। बुद्धिसे कहना चाहिये कि वह निष्पक्षभावसे अपना मत जनाये। ऐसा किया जायगा तो अन्तरात्माकी आवाज या बुद्धिका निर्णय यही मिलेगा कि 'सत्य बोलना ही ठीक है'; क्योंकि सत्य सभीको प्रिय है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, अहिंसादि अन्यान्य प्रसंगोंपर भी विचार करना चाहिये और अन्तरात्माका या बुद्धिका निर्णय प्राप्त हो जानेपर तदनुसार आचरणके लिये तत्पर होना चाहिये। ऐसे निर्णयको पाकर भी जो तदनुसार नहीं करते, वे अपना पतन आप ही करते हैं। अच्छी बात समझकर भी उसका पालन न करे और बुरी समझकर भी उसका त्याग न करे, उसका पतन अवश्य ही होना चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

'मनुष्यको चाहिये कि वह अपने द्वारा संसार-समुद्रसे अपना उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

हमें जो राग-द्वेष, शोक-भय आदि होते हैं,वे क्यों होते हैं? लोग समझते हैं कि प्रारब्धसे होते हैं, परंतु बात ऐसी नहीं है। ये सब होते हैं अज्ञानसे। राग-द्वेष ही शोक-भयमें कारण हैं और राग-द्वेष ही क्लेश हैं। अविद्या यानी अज्ञान ही इनका हेतु है। अविद्याका नाश होते ही इन सबका नाश अपने-आप ही हो जाता है।

धन प्राप्त होना या नष्ट हो जाना, बीमारी होना या स्वस्थ हो जाना और जन्म होना या मर जाना आदि-आदि—इन सबमें तो प्रारब्ध हेतु है; परंतु चिन्ता, भय, शोक, मोह आदिमें तो अज्ञान ही प्रधान कारण है। अज्ञानका नाश होनेपर शोक-मोह नहीं रहते। श्रुति कहती है—

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'

(ईशावास्योप० ७)

'हर्षशोकौ जहाति' (कठ० १।२।१२)

शोकादिमें यदि प्रारब्ध हेतु होता तो भगवान् अर्जुनके प्रति यह कैसे कहते कि—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २।११)

'तू शोक न करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है, परंतु जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।'

अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है। हमें साधन करके उस ज्ञानको प्राप्त करना चाहिये, जिससे शोक-मोह, चिन्ता-भय, चोरी-व्यभिचार, झूठ-कपट और आलस्य-अकर्मण्यता आदि दोषोंका सर्वथा नाश हो जाय। ज्ञान होनेपर अज्ञानका कार्य रह नहीं सकता। इसे एक उदाहरणसे समझिये—बड़ी अच्छी रसोई बनी है, मिठाई बहुत ही स्वादिष्ट है, हम बड़े चावसे खानेको बैठे हैं। दो ही ग्रास लिये थे कि एक मित्रने चुपकेसे आकर सूचना दी कि मिठाईमें जहर है, खाना मत।

बस, इतना सुनते ही हम मुँहका ग्रास उसी क्षण थूक देते हैं, थाली दूर हटा देते हैं और पेटमें गये हुए ग्रासको भी जल्द वमन करके वापस निकालनेकी चेष्टा करते हैं। जहरका ज्ञान हो जानेपर पदार्थ कितना ही मधुर और स्वादिष्ट क्यों न हो, हम अब उसे नहीं खा सकते। मित्रकी बातपर विश्वास जो ठहरा, उसने जो बतलाया, सो ठीक ही बतलाया है। बस, यही हाल संसारके भोगोंका है। हम यदि शास्त्र, भगवान् या सत्पुरुषोंकी वाणीपर विश्वास कर लें तो फिर इन भोगोंमें कभी मन न लगायें। भगवान् स्वयं कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष उनमें नहीं रमता।'

इतना जानकर भी यदि मनुष्य इन्हींमें मन लगाता है तो वह महान् मूर्ख है। तुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

लोग कह सकते हैं कि विषका असर तो तुरन्त होता है; परंतु इसका कोई असर नहीं दिखलायी पड़ता। इसका उत्तर यह है कि विष भी कई प्रकारके होते हैं। ऐसे विष भी होते हैं, जिनका असर पड़ता तो है धीरे-धीरे, परंतु पड़ता है बड़ा ही भयानक। भोग ऐसे ही धीरे-धीरे असर करनेवाला भयानक मीठा विष है।

इसलिये राजस विषय-सुखको भगवान्ने परिणाममें विषतुल्य बतलाया है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है। इसलिये वह सुख राजस कहा गया है।'

यदि कहा जाय कि 'हमलोग तो बहुत विष खा चुके हैं, इसके लिये क्या उपाय करें' तो उपाय बहुत हैं। पहले खाया हुआ विष निकाला भी जा सकता है और पचाया भी। अच्छे वैद्य इसका उपाय बतला सकते हैं, परंतु पहले यह विश्वास भी तो हो कि यह वस्तुतः विष है। विश्वास होता तो कम-से-कम भविष्यमें तो विष खाना बन्द हो ही जाता। जब खाना उसी प्रकार चालू है, तब कैसे माना जाय कि हमने भगवान्के वचनोंपर विश्वास करके इन्हें दुःखदायी और विष मान लिया है?

सुनते हैं, पढ़ते हैं, परंतु विश्वास नहीं होता। पूरा विश्वास होनेपर मनुष्य बिना उपाय किये रह ही कैसे सकता है? विश्वास ही विषनाशक साधनके लगनकी आधारभूमि है। सच्ची लगन कैसी होती है?

लगन लगन सब कोइ कहै, लगन कहावै सोय।
नारायन जेहिं लगनमें तन-मन डारे खोय॥
जो सिर काटे हरि मिले तो हरि लीजै दौर।
ना जाने या देरमें गाहक आवै और॥

परंतु इस विष-सेवनका त्याग तो करना ही चाहिये और शीघ्र ही करना चाहिये; क्योंकि विलम्ब होनेसे रक्षा कठिन हो जायगी। जबतक मृत्यु दूर है, देहमें प्राण है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र उपाय कर लेना चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि अभी क्या है, कुछ दिन बाद कर लेंगे। कौन जानता है, मृत्यु कब आ जायगी। दीर्घजीवनका पट्टा थोड़े ही है। इधर विष तो लगातार चढ़ ही रहा है। रातको ही मौत आ गयी तो फिर क्या होगा? अतएव इसी क्षणसे जग जाना चाहिये और लग जाना चाहिये पूरी लगनसे।

हमारा लक्ष्य होना चाहिये—परमात्माकी प्राप्ति; क्योंकि परमात्मा ही एकमात्र परम सुख और शाश्वती शान्तिके केन्द्र हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ और सबसे बढ़कर प्राप्त करनेयोग्य परम वस्तु हैं, उनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्ण और यथार्थ सफलता है तथा इस परम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न करना ही मनुष्यजीवनके कर्तव्यका पालन करना है। इस कर्तव्यपालनमें जो कुछ भी त्याग करना पड़े, वही थोड़ा है। बस, त्यागकी तैयारी होनी चाहिये, फिर शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा मिल सकते हैं और उनका मिलना भी सहज ही है तथा यह भी विश्वास रखना चाहिये कि हम परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हैं।

तभी तो भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर दिया है। दूसरी योनियोंकी कमी तो थी नहीं; पशु, पक्षी, रीछ, बन्दर कुछ भी बना सकते थे। फिर उन्होंने हमको 'मनुष्य' क्यों बनाया? इसीसे सिद्ध है कि हम इसके अधिकारी थे। भगवान्‌ने हमें मुक्तिका पासपोर्ट दे दिया है। अब जो कुछ कमी है, वह केवल हमारी ही ओरसे है! उन्होंने मनुष्य-शरीर देकर हमें मुक्तिका अधिकारी बना दिया। हम यदि अब प्रमाद और पाप करें तो हमारी बड़ी भारी मूर्खता है। ऐसे ही मूर्खोंके लिये भगवान् कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

(गीता १६। १९)

'ऐसे उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ।'

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

'हे अर्जुन! जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त वे मूढ़ पुरुष मुझको न प्राप्त होकर अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् घोर नरकमें पड़ते हैं।'

पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंके लिये आसुरी योनि और नरकोंका विधान तो ठीक ही है। परंतु भगवान्‌ने जो 'मुझे न प्राप्त होकर' कहा, इसका क्या रहस्य है? ऐसे पापियोंके लिये भगवत्प्राप्तिकी बात ही कैसी? सरकारका यह कहना तो ठीक है कि अमुक चोर है, बदमाश है, उसे बार-बार जेलमें और कालेपानीमें भेजना है। परंतु उसे राज्य न देकर जेलमें भेजना है, इस कथनका क्या अभिप्राय है? बात यह है कि भगवान् जब किसी जीवको मानव-शरीरमें भेजते हैं तो उसे मुक्तिका अधिकार देकर ही भेजते हैं और वह मुक्तिका अधिकार प्राप्त करके आया हुआ जीव जब भगवान्‌को भूलकर अपने जन्मसिद्ध अधिकारकी उपेक्षाकर पाप करता है और पुनः नरकोंमें जानेयोग्य बन जाता है, तब मानो भगवान् खेद प्रकट करते हुए-से कहते हैं कि देखो, इसको मैंने अपनी प्राप्तिका अधिकार देकर भेजा था, परंतु आज इसे नरकमें भेजनेकी व्यवस्था करनी पड़ती है, इससे बढ़कर खेदकी बात और क्या होगी?

जैसे किसी राजाके पुत्रका राज्यपर जन्मसिद्ध अधिकार होता है, परंतु उस समय वह नाबालिग होनेके कारण राज्यशासनके योग्य नहीं समझा जाता। राजा स्वयं ही राज्यकी समस्त व्यवस्था करता है और राजकुमारके बालिग होनेपर उसे सारे अधिकार सौंप देनेकी इच्छा रखता है, परंतु वह यदि अयोग्य निकलता है तथा बुरी संगतमें पड़कर ऐसे नीच कर्म कर बैठता है, जिनके फलस्वरूप प्रजाका विनाश होता है तो ऐसी परिस्थितिमें जन्मसिद्ध स्वत्व होनेपर भी उसे राज्याधिकारसे वंचित कर दिया जाता है; इतना ही नहीं, प्रत्युत उसे और भी दण्ड दिया जाता है और उसे दण्ड देते समय जैसे राजा पश्चात्ताप करता है, ठीक वैसी ही बात मनुष्योंके लिये भी है। मनुष्यको परमात्माकी प्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है। तथापि अपनी अयोग्यता और विपरीताचरणके कारण उसे अपने अधिकारसे वंचित रहकर उलटा दण्ड-भोग करना पड़ता है। इससे अधिक उसका दुर्भाग्य और क्या होगा? इसीलिये भगवान्‌ने उपर्युक्त श्लोकमें 'मुझे न प्राप्त होकर' नीच गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा है।

वस्तुतः यह हमारे लिये बड़े ही परिताप और लज्जाकी बात है कि इस प्रकार हम दयालु भगवान्‌की दयाका तिरस्कारकर अपने मानव-जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। यही मानव-जीवनकी सबसे बड़ी विफलता है और यही मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है। भगवान् कहते हैं—'जल्दी चेतो, कालका भरोसा करके विषयभोगोंमें जरा भी मत फँसो। यह मत समझो कि शरीर सदा रहेगा, यह भी मत समझो कि मुझे भूलकर तुम इसमें कहीं भी सुखकी तनिक छाया भी पा सकोगे। यह मनुष्य-शरीर तो मैंने तुम्हें विशेष दया करके दिया है, अपनी ओर खींचकर परमानन्दरूप परमधाममें ले जानेके लिये। यह बड़ा ही दुर्लभ है। परंतु यह है— अनित्य, क्षणभंगुर और जो मुझको भूल जाता है, उसके लिये नितान्त सुखरहित भी। इसको प्राप्त करके तो बस, निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरा भजन ही करो। तभी तुम जीवनके परम लक्ष्यरूप मुझको प्राप्त करके धन्य हो सकोगे।'

सर्वोत्तम भजन

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

'ब्रह्मविद्या' अनधिकारी पुरुषोंके प्रदानभयसे खिन्न होकर ब्राह्मणके पास आकर कहने लगी—ब्रह्मन्! मुझे वारांगनाके समान सर्वसेवित न बनायें, अपितु कुलांगनाके समान हमारी रक्षा करें। ऐसा करनेपर मैं लोक-परलोकमें कल्याणकारिणी बनूँगी। यदि अत्यन्त जनोपकारकी कामना हो तो भी गुणहीनको तो कभी भी मुझे प्रदान न करना। जैसे अपनी रूपवती कन्या गुणहीनको नहीं दी जाती, वैसे ही मेरे सम्बन्धमें भी विचार रखें। गुणवानोंकी निन्दा, अनार्जव, इन्द्रियपराधीनता, स्त्रीसंग, अविनय तथा मनसा, वचसा, कर्मणा गुरुभक्त न होना आदि मुझे अत्यन्त अप्रिय हैं। इन दोषोंसे रहित अधिकारी पुरुषको प्रदान करनेसे मैं कामधेनुके समान हितकारिणी होऊँगी; अन्यथा फलवर्जित लताके समान वन्ध्या रहूँगी।

श्रीभगवान्, शास्त्र, आचार्य और अन्तरात्माकी जब पूर्ण कृपा होती है तभी विद्या फलवती होती है; अन्यथा समझते-बूझते भी बार-बार प्रमाद होता रहता है। भगवान् कहते हैं कि जो अनन्यचित्त होकर अन्य वस्तुओंसे चित्तको सर्वथा हटाकर सर्वदा निरन्तर मेरा ही चिन्तन करता रहता है, उसे ही मैं सुलभ होता हूँ—**'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥'** शिष्टलोग कहते हैं कि ब्रह्मनिष्ठामें प्रमाद ही मृत्यु है—**'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि।'** क्षणभर भी निर्विकार, विशुद्ध, विज्ञानघन भगवान्का विस्मरण होना ही मृत्युसे भी भयंकर कष्ट है। हमारे आचार्यप्रवर बार-बार कहते हैं कि क्षणभर, मुहूर्तभर भी भगवान् केशवका चिन्तन न करना ही महती हानि और महान् छिद्र है, वही अन्धता और जड़ता है—**'सा हानिस्तन्महच्छिद्रो सा चान्धजडमूढता। यन्मुहूर्तं क्षणं वापि केशवं नैव चिन्तयेत्॥'** परंतु दुःखकी बात है कि फिर भी भगवान्की अपेक्षा संसारका ही चिन्तन अधिक होता है। जिन लोगोंके पास संसारका भी काम है, उनकी बात फिर कुछ क्षम्य भी हो सकती है, परंतु जिनके सब कुछ भगवान् ही हैं, वे भगवद्व्यतिरिक्त वस्तुका अनुसन्धान क्यों करें? कहनेके लिये पन्द्रह घंटेतक भजनमें लगाया जाता है, परंतु यदि सच पूछा जाय तो एक घंटा भी ठीक भजन नहीं होता। दृश्यरहित शुद्ध दृक्, भानस्वरूप अखण्ड ब्रह्मका स्फुरण ही मुख्य भजन है। परंतु दृश्य तो पदे-पदे स्फुरित होता रहता है। यद्यपि तत्त्वज्ञकी दृष्टिमें दृश्य मिथ्या है तथापि उसका भी स्फुरण भला क्यों हो? दृश्यसाक्षीरूपसे भी प्रतिक्षण तत्त्वस्मरण रहे तो भी ठीक है। प्रणवादिका भी ब्रह्मबुद्धिसे स्फुरण उपासना ही है। सगुण, साकार, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका स्फुरण भी उपासना है। नाम, रूप, लीला, धामका भी तात्पर्येण स्फुरण—श्रवण, स्मरण, कीर्तन आदि भी भजन है; परंतु जप, पाठ, पूजा चल रही हो और मन कहीं अन्यत्र ही भ्रमण कर रहा हो, वह तो विडम्बना ही है। फिर भी *'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'* के अनुसार यदि कथंचित् प्रभुसम्बन्ध बना रहा तो परमदयालु, परमकृपालु, प्रभु दीनानाथ, पतितपावन, अशरणशरण, अकारण-करुण, करुणावरुणालय अपनी विरुदावलिके अनुसार उद्धार करते ही हैं। फिर भी उचित यही है कि क्षण, मुहूर्त, निमेषभर भी प्रभुके निर्गुण या सगुण स्वरूपका स्फुरण न रुके, जप-पाठ आदि भी मनसे हो, अन्यमनस्क होकर नहीं। उत्तम भक्त त्रिभुवन-सम्पत्तिके लिये भी क्षणभर भी प्रभुके स्वरूपसे चित्तको नहीं हटाते—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ५३)

मायाकी सर्वव्यापकता

(श्रीवैकुण्ठनाथजी गुप्त 'अरविन्द')

जो कुछ है सब प्रभुकी माया।
सुर-नर-मुनि कोउ जान न पाये, सबको है भटकाया॥
यह मानवजीवन क्षणभंगुर, जिसपर तू इतराया।
सुत, वित, नारि, जगतमें भरमा, नाहक जनम गँवाया॥
पापाचार किया निशि-वासर, पर उपकार न भाया।
प्रभुका नाम जपा नहिं तूने, नरक जात पछताया॥

त्यागका स्वरूप और साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

शास्त्रोंकी ऐसी घोषणा है और सभी विचारशील पुरुष इस बातको स्वीकार करते हैं कि मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। संसारमें बहुत-से लोग इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये यत्किंचित् चेष्टा भी करते हैं, परंतु ऐसे सौभाग्यशाली पुरुष बहुत थोड़े होते हैं, जो शीघ्र ही लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हों। शास्त्रकारोंने और अनुभवी सन्तोंने भगवत्प्राप्तिके मार्गमें कई विघ्न ऐसे बतलाये हैं, जिनको पार किये बिना भगवान्की प्राप्तिके मार्गपर आगे बढ़ना बहुत ही कठिन है। उन विघ्नोंमें प्रधान विघ्न हैं—अहंकार, ममता, कामना और आसक्ति। अज्ञान या मोह तो इन सबका मूल कारण ही है। अज्ञानके नाशसे इन सबका नाश अपने-आप हो जाता है। अज्ञान कहते हैं न जाननेको। अज्ञान यानी भगवान्के स्वरूपका न जानना। जिनको भगवान्के स्वरूपकी जानकारी हो जाती है, वे इन सारे विघ्नोंको सहज ही पार कर जाते हैं; बल्कि उनके लिये इन विघ्नोंका सर्वथा नाश ही हो जाता है, परंतु जबतक अज्ञान-नाश न हो, जबतक भगवान्के तत्त्व-स्वरूपकी जानकारी न हो, तबतक क्या हाथ-पर-हाथ धरे यों ही बैठे रहना चाहिये? नहीं। आसक्ति, कामना, ममता और अहंकारका प्रयोग बुद्धिमानीपूर्वक भगवान्में करना चाहिये। आदर्श ऐसा होना चाहिये कि एकमात्र श्रीभगवान्में ही आसक्ति हो, एकमात्र श्रीभगवान्को पानेकी ही अनन्य कामना हो, एकमात्र श्रीभगवच्चरणोंमें ही अहैतुकी ममता हो, एकमात्र श्रीभगवान्के दासत्वका ही भक्तहृदयमें शान्ति-सुधा बरसानेवाला आदरणीय अहंकार हो। इस प्रकार इन चारोंके दिशा-परिवर्तनका अभ्यास करनेसे क्रमशः इनका दूषित रूप नष्ट होता जायगा। तब ये मोहके पोषक न होकर उनका नाश करनेमें सहायता देंगे और ज्यों-ज्यों मोहका नाश होगा, त्यों-त्यों भगवान्के स्वरूपकी जानकारी होगी और ज्यों-ज्यों भगवान्के स्वरूपका ज्ञान होगा, त्यों-त्यों एकमात्र उन्हींके साथ इन चारोंका सम्बन्ध बढ़ जायगा। फिर तो इनका नाम भी बदल जायगा और इन्हें विशुद्ध अव्यभिचारिणी भक्तिके रूपमें पाकर भक्त कृतार्थ होगा। उस भक्तिके द्वारा भगवान्की यथार्थ जानकारी—भगवत्तत्त्वका सम्यक् ज्ञान होगा और उस ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही भक्त अपने भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त करके कृतार्थ हो जायगा।

विषयोंके दुःख-दोषभरे भयंकर स्वरूपका और भगवान्के चिदानन्दमय अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यका—भगवान्के स्वरूपका, स्वभावका हमें ज्ञान नहीं है, इसीसे हमारी चित्तवृत्तियोंकी प्रवृत्ति भगवान्की ओर न होकर विषयोंकी ओर हो रही है। यदि श्रीभगवान्की परमानन्दरूपता और विषयोंकी भयानकतापर वस्तुतः विश्वास हो जाय तो मनुष्यका मन विषयोंकी ओर कभी नहीं जाय। आज यदि किसीसे कहा जाय कि तुम्हें बहुत रुपये दिये जायँगे, तुम एक तोला अफीम या थोड़ा-सा संखिया खा लो, तो कोई भी खानेको तैयार नहीं होगा; क्योंकि अफीम और संखिया खानेसे मृत्यु हो जायगी, इस बातपर उसका शंकारहित निश्चित विश्वास है। भगवान्ने कहा है—'यह लोक अनित्य और असुख (सुखरहित) है अथवा यह जन्म अनित्य और दुःखालय है, इसे पाकर तुम मुझको ही भजो।'

यदि भगवान्के इस कथनपर शंकारहित निश्चित विश्वास होता और यदि इन वचनोंके अनुसार जगत्के विषय हमें यथार्थमें दुःखरूप और अनित्य जान पड़ते तो हम उनमें क्यों रमते? और यदि भगवान्के अखिल-आनन्दसुधासिन्धु-स्वरूपपर जरा भी विश्वास होता तो हम क्यों उसकी अपेक्षा करते? परंतु ऐसा करते हैं, इसलिये यही सिद्ध होता है कि हम पढ़ते, सुनते और कहते तो हैं, परंतु यथार्थमें हमें इन बातोंपर पूरा विश्वास नहीं है। इसीसे हम इन बातोंकी परवा न करके विषयोंकी ओर दौड़ रहे हैं और जैसे दीपककी ज्योतिके रूप-मोहमें फँसकर उसकी ओर जानेवाला पतंग जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार हम भी भस्म हो जाते हैं!

हमारी वृत्तियाँ सदा ही बहिर्मुखी रहती हैं, विषयोंमें—कार्यजगत्में ही लगी रहती हैं। इसमें जहाँ-जहाँ हमें इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले पदार्थ दीख-सुन पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ ही हमारा चित्त जाता है। हम उन्हींमें सुख खोजते हैं, परंतु यह नहीं जानते कि दिनके साथ रातकी तरह इस सुखका सहचर दुःख सदा इसके साथ रहता है। हम सुख

चाहते हैं और दुःखसे बचना चाहते हैं, इसीलिये हमें दुःख भोगना पड़ता है, यदि वास्तवमें हमें दुःखसे बचना है तो सुखकी स्पृहा भी छोड़ देनी पड़ेगी। हम उस परम सुखको तो चाहते नहीं जो सदा रहता है, जो कभी घटता-बढ़ता नहीं, जो असीम और अनन्त है। हम तो चाहते हैं क्षणिक इन्द्रियसुखको, जो वास्तवमें है नहीं; केवल भ्रमसे भासता है और बिजलीकी भाँति एक बार चमककर तुरंत नष्ट हो जाता है। परंतु हम अबोध इस बातको जानते नहीं, इसीसे उसके पीछे पड़े रहते हैं और एक दुःखके गड्ढेसे निकलकर तुरंत ही दूसरा गहरा गड्ढा खोदने लगते हैं।

इस इन्द्रियसुखके प्रधान साधन माने गये हैं—दो पदार्थ। एक 'स्त्री' और दूसरा 'धन'। इसीलिये शास्त्रोंने बड़े जोरोंसे इनकी बुराइयोंकी घोषणा करके कामिनी-कांचनके त्यागका बार-बार उपदेश किया है। बात यह है कि विषयासक्त मनुष्यकी बहिर्मुखी इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही आपातरमणीय विषयोंकी ओर दौड़ती हैं। कामिनी-कांचनमें रमणीयता प्रसिद्ध है। इनकी ओर लगनेके लिये किसीको उपदेश नहीं करना पड़ता। इन्द्रियाँ अपने-आप ही मनको इनकी ओर खींच ले जाती हैं। जगत्‌के इतिहासको देखनेसे पता लगता है कि संसारके महायुद्धोंमें—भीषण नरसंहारमें 'कामिनी और कांचन' ही प्रधानतया कारण रहे हैं। यहाँ इतनी बात और याद रखनी चाहिये कि पुरुषके लिये जैसे स्त्री आकर्षक है, वैसे ही स्त्रीके लिये पुरुष है। 'कामिनी' शब्दसे यहाँ केवल स्त्री न समझकर यौनसुख प्रदान करनेवाला व्यक्ति समझना चाहिये—स्त्रीके लिये पुरुष और पुरुषके लिये स्त्री। जैसे पुरुषका चित्त कामिनी-कांचनके लिये छटपटाया करता है, प्रायः उसी प्रकार स्त्रीका चित्त भी पुरुष और धनके लिये ललचता रहता है।

परिणाम नहीं जानते, इसलिये पुरुष नारीके सौन्दर्यपर और नारी पुरुषके सौन्दर्यपर मोहित होते हैं और इसीलिये विलासिताका सामान एकत्र करनेकी अभिलाषासे नर-नारी धनकी ओर आकर्षित होते हैं। जैसे स्त्री या पुरुषके अधिक भोगसे धन, धर्म और जीवनी-शक्तिका नाश होता है, वैसे ही धनके लोभमें भी स्वास्थ्य, धर्म, कर्म और जीवनकी बलि देनी पड़ती है। एक बार इनकी प्राप्ति या संयोगमें कुछ सुख-सा दिखायी देता है, परंतु परिणाममें भयानक दुःख और अशान्तिकी प्राप्ति अनिवार्य होती है। जबतक इनका वास्तविक त्याग नहीं हो जाता, तबतक कभी शान्ति नहीं मिलती। शान्तिकी प्राप्ति तो इनके सर्वतोभावके त्यागसे ही होती है।

परंतु क्या मनुष्यके लिये इनका त्याग सम्भव है? है तो फिर उस त्यागका स्वरूप क्या है और वह त्याग कैसे हो सकता है? पुरुष हो या स्त्री, संसारमें उसका शरीर माता-पिताके रज-वीर्यसे ही बनता है। पालन-पोषण भी माता-पिता या बहन-भाई आदिके द्वारा ही होता है। इसी प्रकार सर्वत्यागी संन्यासीको भी कौपीन, फटे कंथे और भिक्षाकी आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थितिमें कोई भी स्त्री या धनका सर्वथा त्याग कैसे कर सकता है?

इन प्रश्नोंका उत्तर यह है कि पहले त्यागके अर्थको समझना चाहिये। किसी वस्तुका ग्रहण या व्यवहार न करना बाहरी त्याग है और उस वस्तुमें आसक्तिहीन रहना भीतरी त्याग है। अब विचार कीजिये, हम एक चीजका त्याग कर देते हैं, परंतु मन-ही-मन उसकी आवश्यकता समझते हैं, उसका अभाव हमारे मनमें खटकता है और उसे प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। ऐसी हालतमें उस वस्तुका बाह्य त्याग वास्तविक त्याग नहीं है। असली त्याग तो वही है, जिससे उस वस्तुमें आसक्ति न रहे। जिस त्यागमें वस्तुका चिन्तन और आस्वाद मन-ही-मन होता है, वह त्याग वास्तविक नहीं है। अवश्य ही भोगमय जीवनकी अपेक्षा आन्तर त्यागके साधनरूपमें बाह्य त्याग सराहनीय है और आवश्यक भी है, उससे आन्तर त्यागमें सहायता मिलती है और त्यागीकी वृत्ति स्वाभाविक रूपमें बढ़ती है, परंतु असली त्याग तो आसक्तिका त्याग ही है। आसक्तिके त्यागसे द्वेष, भय, हर्ष, शोक आदिका भी स्वाभाविक त्याग हो जाता है। फिर आगे चलकर त्यागके अभिमान और त्यागकी स्मृतिका त्याग करना पड़ता है। यही त्यागका स्वरूप है और इस त्यागकी प्राप्ति आसक्तिके दोष और भगवान्‌के यथार्थ स्वरूपको जाननेसे होती है। यह सत्य है कि स्वरूपसे स्त्री और धनका त्याग सर्वांशमें होना कठिन है, तथापि शास्त्र इसीलिये इनके त्यागपर इतना जोर देते हैं कि सर्वथा त्यागकी बात कहनेसे ही मनुष्य इनका कहीं उचित रूपमें व्यवहाररूपमें ग्रहण करेंगे। मनसे तो त्याग होना ही चाहिये। बाह्य त्यागमें पुरुषको चाहिये कि स्त्रीजातिमें देवीकी भावना करे—'**विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।**' और भगवती

जानकर उन्हें मातृभावसे नमस्कार करे। स्त्रियोंको चाहिये कि पुरुषोंको पिता, भाई या पुत्रके रूपमें देखें। जहाँतक हो सके, किसी भी रूपमें स्त्री-पुरुषका परस्पर ज्यादा मिलना-जुलना लाभदायक नहीं है, जहाँ बहुत आवश्यक हो, वहाँ उपर्युक्त भावसे मिले। इसी प्रकार न्यायमार्गसे उतना ही धनोपार्जन करनेकी चेष्टा करे, जिससे गृहस्थका कार्य सीधे-सादे रूपमें चल जाय। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये और शरीरके आरामके लिये परमेश्वरको भूलकर, न्यायपथको त्यागकर, दूसरेको धोखा देकर, दूसरेका हक मारकर और असत्यका आश्रय लेकर धनोपार्जन करनेकी चेष्टा कभी न करे।

अवश्य ही भगवान्‌की सृष्टिमें स्त्री और धनकी भी सार्थकता है। उसकी भी आवश्यकता है, परंतु वह होनी चाहिये परमार्थमें सहायकके रूपमें। यह भी नहीं समझना चाहिये कि परस्त्रीका तो त्याग करना होगा, किंतु पराये धनके त्यागकी उतनी आवश्यकता नहीं है। जैसे नीच कामवृत्तिका गुलाम होनेपर मनुष्य पशुसे भी अधम, नीच या असुर हो जाता है, वैसे ही अर्थलोभी या अर्थसंग्रही मनुष्य भी राक्षस हो जाता है। वह धन बटोरनेके लिये क्या नहीं करता? गरीबोंके, दीन-दु:खियोंके तप्त अश्रुओंसे अपने भोग-विलासकी प्यास बुझानेवाला और पापमूलक धनका संग्रह करनेवाला मनुष्य राक्षस नहीं तो और क्या है? अपने शरीरकी रक्षाके लिये जितना आवश्यक होता है, उतने ही अर्थपर वस्तुत: हमारा अधिकार है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(७।१४।८)

'जितनेसे पेट भरे उतनेपर ही मनुष्योंका अधिकार है, जो इससे अधिकको अपना मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

धन हो, उससे गरीब-दु:खियोंकी सेवा करनी चाहिये, परंतु इस सेवामें भी अहंकार नहीं आना चाहिये। यही मानना चाहिये कि भगवान्‌की प्रेरणासे प्रेरित होकर भगवान्‌की चीजसे भगवान्‌की सेवा की जाती है।

वास्तवमें कामिनी-कांचनकी क्षणभंगुरता, नि:सारता और दु:खरूपताका निश्चय हो जानेपर तो इनमें मन रहेगा ही नहीं। फिर तो इनके त्यागमें एक विलक्षण आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी और जिस त्यागमें आनन्द और शान्ति मिलती है, वही यथार्थ त्याग है।

इनसे भी बढ़कर त्याग करनेयोग्य एक चीज और है—वह है कीर्तिकी इच्छाका त्याग। 'किसी प्रकारसे भी हमारी कीर्ति हो, लोग हमें उत्तम समझें, आज कोई चाहे न जाने, परंतु इतिहासमें हमारा नाम उज्ज्वल रहे। हमारा नाम न सही, हमारे वंशका, हमारी जाति या हमारे देशका नाम रहे। (यद्यपि ऐसी इच्छा व्यक्तिगत कीर्तिकी इच्छासे उत्तरोत्तर उत्तम है; क्योंकि इसमें कुछ त्याग है, भले ही इस सुकीर्तिके लिये स्त्री, पुत्र, धन, मान, प्राण आदि किसी भी वस्तुका त्याग क्यों न करना पड़े।) इस प्रकारकी कीर्तिकामनाका त्याग होना बहुत ही कठिन है और जबतक इसका त्याग नहीं होता, तबतक बड़े-से-बड़े अनुष्ठान, पुण्यकर्म, साधन और तप इसके प्रवाहमें सहज ही बह जाते हैं। मनुष्य अपने जीवनभरका किया-कराया सब कुछ इस कीर्ति-पिशाचीके चक्रमें पड़कर नष्ट करता रहता है। वह प्रत्येक कामके करनेके पहले ही यह सोचता है कि इसमें मेरी कीर्ति होगी या नहीं, इसलिये उसे अकीर्तिकर कल्याणमय कर्मसे वंचित रहना पड़ता है और आगे चलकर ऐसा कीर्तिकामी पुरुष दम्भाचरणका आश्रय लेकर साधनके पथसे पतित हो जाता है। भगवान्‌की स्मृति छूट जाती है। भगवान्‌के स्थानपर हृदयमें बाहरसे बहुत ही सुन्दर सजी हुई कीर्तिकी करालमूर्ति आ विराजती है और येन-केन-प्रकारेण उसीकी सेवामें मनुष्यका बहुमूल्य जीवन व्यर्थ चला जाता है। इन सब प्रतिबन्धकोंका मूल है मोहरूप विघ्न, और उसके सहायक हैं उसीसे पैदा हुए पूर्वोक्त अहंकार, ममता, कामना और आसक्तिरूप दोष। इनका अपने पुरुषार्थसे सहसा त्याग होना बड़ा कठिन है। भगवत्कृपाके बलसे तो सब कुछ हो सकता है। भगवत्कृपा सबपर होते हुए भी उसका अनुभव विश्वासी और नामाश्रयी पुरुषोंको होता है। अतएव भगवान्‌का नाम लेते हुए भगवान्‌की कृपापर विश्वास करना चाहिये। भगवान्‌की कृपासे इन चारोंका मुँह विषयोंकी ओरसे घूमकर भगवान्‌की ओर हो जायगा। भगवान् अपनेमें ही सबका प्रयोग करा लेंगे।' फिर तो गोपियोंकी भाँति हम भी कह सकेंगे—

स्याम सरबस तुम हमारे।
तुम्हीं से जीवन हमारा तुम्हीं रक्षक हो हमारे॥

व्यवसायात्मिका बुद्धि

(श्री के०पी० मिश्र)

हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपि वा।
तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते॥

(अष्टावक्रगीता १६। ११)

यदि भगवान् शंकर, विष्णु तथा ब्रह्मा भी उपदेश दें तो मनुष्य तबतक आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, जबतक कि वह संसारसे विरक्त नहीं हो जाता।

भौतिक भोग तथा ऐश्वर्यके प्रति आसक्ति ही भगवत्प्राप्तिमें बाधक है। जिसके फलस्वरूप ब्रह्मात्मैक्य-बोध सम्भव नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

(गीता २। ४१)

भगवत्प्राप्ति मुझे होगी ही—ऐसा दृढ़ निश्चय व्यवसायात्मिका बुद्धि कहलाती है। दूसरे शब्दमें यही श्रद्धा है। जो दृढप्रतिज्ञ नहीं हैं, उनकी बुद्धि अनेक शाखाओंमें विभक्त रहती है।

भगवान् पुनः आगे कहते हैं—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २। ४४)

समाधि—'स्थिर मन है', जो चित्तकी वृत्तियोंके निरोधसे ही प्राप्त हो सकती है। जब मन स्थिर होकर आत्मज्ञान प्राप्त करता है तो उसे समाधि कहते हैं। जो लोग इन्द्रियभोगोंमें ही लिप्त हैं, उनके लिये दृढ़ निश्चयात्मिका समाधि कभी भी सम्भव नहीं है।

चैतन्यचरितामृतके अनुसार—'श्रद्धा' का अर्थ है अलौकिक वस्तुमें अटूट विश्वास। कृष्णभक्तिके दृढ़ निश्चयपर आधारित व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। वैसा व्यक्ति समझता है कि भगवान् ही सभी कारणोंके कारण हैं।

श्रुति कहती है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

(ईश० उप० ९)

जो मनुष्य भौतिक भोगोंमें लिप्त रहकर उनकी प्राप्तिके साधनरूप 'अविद्या' का—विविध प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे उन कर्मोंके फलस्वरूप अज्ञानान्धकारसे परिपूर्ण विविध योनियोंमें भिन्न-भिन्न भोगोंको प्राप्त करते हैं।

पुनः श्रुति कहती है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

(कठो० १। २। २४)

जिसका मन परमात्माको छोड़कर दिन-रात सांसारिक भोगोंमें भटकता है, वह हमेशा अशान्त रहता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ जिसके वशमें नहीं हैं, ऐसा मनुष्य सूक्ष्म बुद्धिद्वारा आत्मविचार करनेपर भी परमात्माको नहीं पा सकता।

जड़भरतजी राजा रहूगणसे कहते हैं—

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १२)

हे रहूगण! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिमें अपनेको नहलाये बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, अतिथिसेवा, दीनसेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे वह परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

श्रीमद्भागवत (७। ५। ३२)-में कहा गया है—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

जिनकी बुद्धि भगवान्‌के चरणकमलोंका स्पर्श कर लेती है; उनके जन्म-मृत्युरूप अनर्थका सर्वथा नाश हो जाता है, परंतु जो लोग अकिंचन भगवत्प्रेमी महात्माओंके चरणोंकी धूलिमें स्नान नहीं कर लेते, उनकी बुद्धि काम्य-कर्मोंका पूर्ण सेवन करनेपर भी भगवच्चरणारविन्दोंका स्पर्श नहीं कर सकती।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रतिकूलतामें पुराने पाप नष्ट होते हैं और नयी शक्ति मिलती है। भगवान् कृपा करके प्रतिकूलता भेजते हैं।

करणकी सहायता भले ही हो, पर करणकी अपेक्षा न हो—यह 'करणनिरपेक्ष साधन' कहलाता है। स्वयंकी स्वीकृति करणनिरपेक्ष है। स्वयंकी स्वीकृति दृढ़ ही होती है, अदृढ़ नहीं। स्वयंसे भगवान्‌को सब जगह स्वीकार कर लें। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*** —यह स्वयंकी स्वीकृति है। विवाहिता स्त्री स्वप्नमें भी अपनेको सुहागिन ही देखती है; क्योंकि यह स्वयंकी स्वीकृति है।

भक्ति इतनी विलक्षण है कि इससे मनुष्य गुणातीत भी हो जाता है और प्रेम भी प्राप्त कर लेता है।

निर्वाहयोग्य भोग तो पहलेसे ही निश्चित है—'**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**' (योगदर्शन २। १३)। अधिक भोग, मान-आदर आदि चाहते हैं—यह गलती है।

× × ×

सांख्ययोगीको तो कर्मयोगकी जरूरत है, पर कर्मयोगीके लिये सांख्ययोगकी जरूरत नहीं है—

'**कर्मयोगो विशिष्यते**' (गीता ५। २)।

गीताकी भक्ति 'अद्वैतभक्ति' है। अधिभूत आदि भी भगवान् हैं तो हमारे शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि अलग कैसे रहें? वे भी '**वासुदेवः सर्वम्**' के अन्तर्गत ही हैं। '**वासुदेवः सर्वम्**' में मैं-तू-यह-वह नहीं है। इसमें सब कुछ चिन्मय हो जाता है, जड़ चीज रहती ही नहीं। छिपनेयोग्य कोई चीज है ही नहीं, फिर भगवान् कैसे छिपें? किसके पीछे छिपें?

भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करना चाहिये—'**मामाश्रित्य यतन्ति ये**' (गीता ७। २९), '**मद्व्यपाश्रयः**' (गीता १८। ५६)। यदि भगवान्‌का आश्रय न लिया जाय तो अभिमान पिण्ड नहीं छोड़ेगा। भगवत्प्राप्ति कृपासे होती है, उद्योगसे नहीं। भगवत्कृपासे भक्त विघ्नोंको भी तर जाता है और तत्त्वप्राप्ति भी कर लेता है—

'**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**'

(गीता १८। ५८)

'**मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥**'

(गीता १८। ५६)

× × ×

संसारमें अभाव मुख्य है। जो कभी है, कभी नहीं है, वह कभी नहीं है। जो किसी जगह है, किसी जगह नहीं है, वह किसी भी जगह नहीं है। तात्पर्य है कि उसमें 'नहीं' ही मुख्य है। परमात्मामें 'है' ही मुख्य है।

जो किसी अवस्थामें नहीं है, वह किसी भी अवस्थामें नहीं है। भगवान् सब अवस्थाओंमें हैं। जो चीज हमें मिलनेवाली नहीं है, वह किसीको भी मिलनेवाली नहीं है। भगवान् सबके लिये समान हैं और सबको मिल सकते हैं। अतः संसारकी आशा न रखें और भगवान्‌से निराश न हों।

× × ×

स्वार्थ और अभिमान—ये दो चीजें बड़ी घातक हैं। इनका त्याग करके दूसरेका हित करो। दूसरेका हित कैसे हो—यह मनुष्यके ऊपर ही निर्भर है। पशु-पक्षी मनुष्यके लिये नहीं हैं, प्रत्युत मनुष्य उनके लिये है।

कर्मयोगकी प्रणाली है—दूसरेका हित करना। अपना जीवन अपने लिये नहीं है, प्रत्युत दूसरेके हितके लिये है। 'बुरा न करना' सबके हाथकी बात है, पर दूसरेका भला करना अरबपतिके भी हाथकी बात नहीं है। किसीका बुरा होनेसे आप राजी होते हैं तो आपके मनमें बुरा करनेका भाव है—यह कसौटी है। किसीका भी बुरा न करना कर्मयोगकी नींव है। बुराई छोड़नेसे दो अवस्थाएँ होंगी—सबका भला ही करेंगे अथवा कुछ भी नहीं करेंगे। कुछ नहीं करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

दूसरेका हित करनेका तात्पर्य है—ऋण चुकाना। पापीकी मुक्ति (फल भोगकर) हो सकती है, पर ऋणीकी मुक्ति नहीं होती। ऋणीकी मुक्ति उसके अधीन है, जिसका ऋण है।

कर्तव्य वह होता है, जिसे कर सकते हैं और जिसे करना चाहिये। कर्तव्य है—दूसरेके अधिकारकी पूर्ति कर देना और अपना अधिकार छोड़ देना। अपने कर्तव्यका पालन करें और दूसरेके अधिकारकी रक्षा करें।

मशीन खराब हो तो हठ करनेसे अर्थात् धक्का देनेसे काम नहीं चलेगा—'**निग्रहः किं करिष्यति**' (गीता ३। ३३)। मशीनकी खराबी ठीक करो। खराबी है—राग-द्वेष। इसलिये आगे राग-द्वेषके वशमें न होनेकी बात कही है—

'तयोर्न वशमागच्छेत्' (३। ३४)।

× × ×

करनेकी शक्ति केवल सेवाके लिये है और यह भगवान्से मिली है। भगवान्की चीज भगवान्के समर्पित कर देनी चाहिये। जो मिला है, वह साधन-सामग्री है। बीमारी भी साधन-सामग्री है और नीरोगता भी। इसी तरह निर्धनता-धनवत्ता, निर्बलता-सबलता आदि सब साधन-सामग्री है। बीमारी भगवान्की दी हुई तपस्या है। प्रतिकूलतामें विकास होता है और अनुकूलतामें विनाश। मनुष्य-शरीर साधन-शरीर है। जो परिस्थिति आती है, वह केवल साधन-सामग्री है।

× × ×

व्याख्यान सुनते समय यह भाव रहे कि यह मेरे लिये है। कर्मयोगीको कर्मयोगकी बात अपने लिये समझनी चाहिये। ऐसे ही ज्ञानयोगकी अथवा भक्तियोगकी बात भी साधकको अपने लिये समझनी चाहिये।

गीताके अनुसार 'धर्म' का अर्थ है—कर्तव्यका पालन। तभी गीतामें पहले स्वभावज कर्मोंका वर्णन करके फिर कहा—**'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।'** (गीता १८। ४७)। आज्ञा-पालन करना 'परमधर्म' है—

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

(रा०च०मा०बाल० ७७। १, अयो० २१३। २)

उपर्युक्त बात एक बार शंकरजीने कही और एक बार भरतजीने कही। तात्पर्य यह हुआ कि विरक्त हो या राजा (गृहस्थ), भगवान् और भक्तकी आज्ञा सबको समानरूपसे पालन करनी चाहिये। परमधर्मके लिये धर्मके आश्रयका त्याग किया जा सकता है—**'सर्वधर्मान्परित्यज्य०'** (गीता १८। ६६)। **'एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥'** (गीता ९। २१) 'तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम धर्मका आश्रय लिये हुए भोगोंकी कामना करनेवाले मनुष्य आवागमनको प्राप्त होते हैं।' **'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)—भगवान्की यह आज्ञा परम धर्म है। इसका पालन करनेवाला आवागमनको प्राप्त नहीं होता।

वचनमात्रसे भगवान्के शरण होनेपर भगवान् पीछे पड़ जाते हैं और सर्वथा शरण कराकर ही छोड़ते हैं। अर्जुनने **'करिष्ये वचनं तव'** (गीता १८। ७३)—ऐसा कहा, तब भगवान्ने छोड़ा।

× × ×

'द्विषो जहि' (शत्रुओंका नाश करो)—यह कहना ठीक नहीं है। सन्तोंने कहा है कि हमारे शत्रु सदा जीते रहें; क्योंकि वे हमें सचेत करते हैं।

सबसे बढ़िया है—त्याग। सेवा तो करे, पर चाहे कुछ नहीं। दूसरोंकी सेवा करनेके लिये ही मानवजन्म है।

संसारकी थोड़ी भी वासना मुक्त नहीं होने देगी।

× × ×

टीकाओंको देखनेके कारण गीताका असली अर्थ समझमें नहीं आता। गीताकी खास बात है—समता। किसी भी योग-मार्गसे चलो, अन्तमें समता आनी चाहिये।

भोग और संग्रहका त्याग किये बिना व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होगी। गीतामें वेदोंकी निन्दा नहीं है, प्रत्युत सकाम भाववाले व्यक्तियोंकी निन्दा है।

प्रत्येक कार्य भगवान्के लिये करें। हमारी क्रियासे किसीको कष्ट न हो, दुःख न हो। अपना-अपना काम ठीक तरहसे करें। हरदम सावधानी रखें। सावधानी ही साधना है। हरदम सावधान रहनेवाला ही साधक होता है।

× × ×

अन्तःकरणकी शुद्धि क्रियाकी सिद्धिमें काम आती है। परमात्मतत्त्व अन्तःकरणसे अतीत है। अतः परमात्मप्राप्ति अन्तःकरणके द्वारा नहीं होती, फिर उसमें अन्तःकरणकी शुद्धि-अशुद्धि क्या काम आयेगी? तत्त्वज्ञान जिज्ञासुको होता है। अन्तःकरणकी शुद्धिसे तत्त्वज्ञान नहीं होता। मनोनाशसे, मन एकाग्र करनेसे समाधि होगी, सिद्धियाँ आयेंगी। सिद्धियाँ परमात्मप्राप्तिमें विघ्न हैं।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

किसी भी अप्राप्त वस्तुकी कामना न रहे। स्पृहा अर्थात् किसी वस्तुकी परवाह, आवश्यकता भी न रहे। पासमें जो वस्तु है, उसमें ममता भी न रहे। अहंकार अर्थात् मैंपन भी न रहे। निरहंकार होनेपर 'मैं निरहंकार हो गया'—यह अहम् भी नहीं रहता। इसलिये इसे 'ब्राह्मी स्थिति' कहा गया है—**'एषा ब्राह्मी स्थितिः'** (गीता २। ७२)। वास्तवमें उसकी कोई स्थिति नहीं होती। वह स्थितिसे अतीत होता है।

गंगा-स्नान पाप धोनेके लिये है, मैल धोनेके लिये नहीं।

कहानी—

मातृदर्शन

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

सन् १६५७ ई०की अक्टूबरकी एक साँझ, सुहावनी सन्ध्या, गुलाबी मौसम। शिवाजी देवी भवानीके मन्दिरसे बाहर आये तो चकित रह गये।

खच्चरों और बैलोंका लम्बा-सा कारवाँ—हीरे, पन्ने और जवाहरातसे भरे हुए बक्सों और सोने-चाँदीके भारसे दबे पशु धीरे-धीरे किलेमें प्रवेश कर रहे थे।

प्रधानमन्त्री मोरोपन्तने जिज्ञासा शान्त की—महाराज! अम्बाजी सोनदेवने कल्याणके सूबेपर आधिपत्य कर लिया और लूटका सामान लेकर आये हैं। शिवाजीने अम्बाजीको गले लगाया और बहुमूल्य कण्ठहारसे पुरस्कृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याणका शक्तिशाली सूबेदार इतनी आसानीसे कैसे हार गया!

शाबाश अम्बाजी! तुम्हारी स्वामिभक्ति और बहादुरीपर हमें गर्व है, शिवाजीकी छाती फूल उठी अपने बहादुर सेनापतिको देखकर।

सहसा वे चौंके, पूछा—'इस पालकीमें क्या है?' अम्बाजीने मुसकराते हुए जवाब दिया—'महाराज! इस पालकीमें कल्याणकी सबसे खूबसूरत नाजनीन है—मुल्ला अहमदकी पुत्रवधू सलमा, जिसकी खूबसूरतीकी शोहरत सारे महाराष्ट्रमें फैली हुई है। इसका क्रूर श्वसुर सैकड़ों हिन्दू-ललनाओंकी आबरूके साथ खेला है, आज उससे बदला लेनेका सुन्दर अवसर मिला है।'

अम्बाजी अपनी सफलतापर फूले नहीं समा रहे थे, परंतु शिवाजी विचलित हो उठे, उन्होंने आँखें मूँद लीं, उन्हें अपना बचपन याद आने लगा। पिता शाहजी बीजापुरके सुलतानोंके यहाँ जागीरदार एवं फौजी अफसर थे। तीन हजार मराठा घुड़सवार और पैदल सिपाहियोंकी उनकी निजी फौज थी। माता जीजाबाई कर्तव्यनिष्ठ, साहसी एवं धर्मपरायणा आदर्श नारी तो थीं, किंतु परमात्माने उन्हें रूप नहीं दिया था।

शाहजीने तीस वर्षकी अवस्थामें तुकाबाई नामकी एक दूसरी सुन्दर युवतीसे विवाह कर लिया और उसीके साथ बंगलौरमें रहने लगे। सन् १६२९ ई० में उन्होंने जीजाबाईको दो वर्षके पुत्र शिवाके साथ शिवनेरके किलेमें भेज दिया। दुखिया जीजाबाईने अपना सारा प्यार बालक शिवापर उँड़ेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन बिताने लगी।

सौभाग्यसे दादाजी कोणदेव-जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थगुरु रामदास-जैसे भविष्यद्रष्टाका मार्गदर्शन बालक शिवाको मिला; इस कारण बचपनसे ही शिवामें अच्छे संस्कार जमने लगे। साहस और वीरताके साथ धर्मके प्रति प्रगाढ़ आस्थाके लक्षण भी उस नन्हेसे बालकमें स्पष्ट ही नजर आने लगे।

उन दिनों विवाह बचपनमें ही हो जाते थे। वे चौदह वर्षके हुए तो माताने पतिको शिवाके विवाहके लिये लिखा। शाहजीने उन दोनोंको बंगलौरमें अपने निवास-स्थानपर बुला लिया। वहाँ सौत तुकाबाईने उनका तरह-तरहसे अपमान किया, परंतु जीजाबाईने बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे अपने-आपको अत्यन्त संयत कर लिया था।

उन्होंने शाहजीसे केवल इतना कहा—'आपके सुखमें ही मेरा सुख है। आपका सारा धन और जागीर तुकाबाई और उनके पुत्र व्यंकोजीको फले-फूले। शिवाको केवल पूनाका गाँव दे दीजिये; फिर यदि उसमें योग्यता होगी, तो वह उसे और बढ़ा लेगा।'

इस प्रकार पन्द्रह वर्षकी छोटी अवस्थामें शिवाजी पूनाके जागीरदार बन गये। उन्होंने घुड़सवारोंकी एक छोटी-सी टुकड़ी तैयार कर ली और मौका देखकर आसपासके इलाकोंपर छापे मारने लगे। मुसलमान सुलतानों और अधिकारियोंके अत्याचारसे लोग बहुत दुःखी थे, इसलिये उन्होंने शिवापर विशेष रोकथाम नहीं लगायी। शिवा लूटका सामान लाकर माताके सामने रख देते। इसमेंसे तीसरा हिस्सा सिपाहियोंमें बाँट दिया जाता। कुछ अंश जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंके पुनरुद्धारमें और कुएँ-बावलियोंकी मरम्मत या निर्माणमें व्यय किया जाता। बाकी बचा हुआ धन बेहतरीन घोड़े और नये-नये अस्त्र-शस्त्रके खरीदनेमें लगाया जाता।

सर्वप्रकारसे साधन-सम्पन्न होते हुए भी वे अपनेको स्वामी रामदासका सेवकमात्र मानते थे, इसीलिये अपने ध्वजका रंग भी भगवा रखा। सन् १६५७ ई० में उनकी अवस्था केवल तीस वर्षकी थी, किंतु इसी बीच उन्होंने महाराष्ट्रके बहुत-से किलोंपर कब्जा कर लिया। बीस हजार सुसज्जित मराठा-वीरोंकी उनके पास फौज थी। दुश्मनोंकी बड़ी-से-बड़ी फौजपर वे बाजकी तरह झपटते और लूटकर वापस रायगढ़के अपने अभेद्य दुर्गमें चले आते। पचीस कोसका धावा मारकर मराठा-फौज रायगढ़ बेखटके वापस पहुँच जाती तो लोगोंको शुरू-शुरूमें विश्वास नहीं होता था।

बादमें अफगानों और पठानोंमें धारणा बन गयी कि शिवाजीको जिन्नातोंका सहारा है; फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड़कर भाग खड़े होते।

दिन-रात युद्धमें लगे रहनेपर भी अपनी मातासे उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि उन्हें हिन्दू-धर्मके प्रति पूरी आस्था थी तथा यवनोंके आये-दिनके अत्याचार और मन्दिरोंके विध्वंससे उनका चित्त खिन्न हो उठता, फिर भी दूसरे धर्मोंकी उन्होंने कभी निन्दा नहीं की और न किसी मसजिद अथवा गिरजेको नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नहीं, उन्होंने जीण-शीर्ण मसजिदोंकी मरम्मत भी करवायी। अपने सेनापतियोंको भी आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थानको हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनोंकी किसी स्त्रीकी बेइज्जती हो।

शिवाजीने देखा कि पालकीके झीने परदेके पीछे जवाहरातोंसे सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और सिमटी-सी एक ओर बैठी है। कुछ देरतक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—'बहन! उम्रमें तुम मुझसे छोटी हो, पर तुममें मुझे अपनी 'माताश्री' दिखायी देती हैं। हाँ, फर्क इतना ही है कि परमात्माने तुम्हें अतुलनीय रूप-सम्पत्ति भी दी है। लगता है कि ईश्वरने अवकाशके समय अत्यन्त साध और सावधानीसे तुम्हारी रचना की है। सौभाग्यसे इस सौन्दर्यका थोड़ा-सा अंश मेरी माँको मिल जाता तो उसे सुहागका दु:ख नहीं सहन करना पड़ता और मैं भी सुन्दर पैदा होता। मेरे सेनापतिने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें बिना वजह तकलीफ दी है; जिस धारणासे वह तुम्हें यहाँ ले आया है, उसे सुनकर लज्जासे मेरा सिर झुका जा रहा है। यदि माँ और गुरुजी सुनेंगे तो सोचेंगे कि इस जघन्य कर्ममें शिवाका संकेत अवश्य रहा होगा। तुम चिन्ता न करो। तुम्हें इज्जतके साथ तुम्हारे खाविन्द (पति)-के पास पहुँचा दिया जायगा। मेरी बहन नहीं है, आजसे तुम मेरी छोटी बहन हुई और मैं तुम्हारा बड़ा भाई।'

पास खड़े सैनिकोंने देखा शिवाजीकी आँखें गीली हो गयी हैं। थोड़ी देर बाद मौन तोड़कर क्रोधमें काँपते हुए उन्होंने कहा—अम्बाजी! तुमने अपनी मूर्खतासे इतनी बड़ी जीतको हारमें बदल दिया। लोग जब सुनेंगे कि शिवाजी भी अपने हरमके लिये परायी बहू-बेटियोंको लूटता है तो हमारे बारेमें क्या सोचेंगे? कहाँ रह जायगी हमारी इज्जत? फिर तो मराठे सिपाही और सरदार औरतोंको दिन-दहाड़े बेआबरू करेंगे। पिछले चौदह वर्षोंसे तुम मेरे साथ हो—क्या कभी इस प्रकारकी इच्छा या लालसाका आभास भी तुम्हें दिखायी दिया? फिर कैसे तुम्हें हिम्मत हुई कि मेरे आदेशकी उपेक्षाकर एक दु:खी नारीको यहाँ ले आये? अम्बाजी! तुमने मेरी आबरूमें बट्टा लगा दिया। यदि राजा स्वयं अपना शील खो बैठेगा तो सैनिकोंका तो बाँध ही टूट जायगा। क्या यही मेरी हिन्दू-पद-पादशाहीका विकृत रूप होगा? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि फाँसीपर लटका दिया जाय; किंतु चूँकि इस समय मैं स्वयं क्रोधमें हूँ, इसलिये तुम्हारा फैसला मैं प्रधानमन्त्री मोरोपन्तपर छोड़ता हूँ।

कहाँ तो अम्बाजी विजयकी खुशीमें झूमता हुआ आया था और कहाँ सबके सामने उसे यह अपमान सहना पड़ा। प्रधानमन्त्री मोरोपन्तका अम्बाजीपर स्नेह था। उन्होंने अपनी देख-रेखमें उसे सब प्रकारसे योग्य बनाकर इतने बड़े ओहदेपर पहुँचाया था। हाथ जोड़ते हुए शिवाजीसे उन्होंने प्रार्थना की—महाराज! अम्बाजी अभी युवक है और कुछ अबोध भी, किंतु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है। यह इसका पहला अपराध है, अतः मैं इसे क्षमा कर देनेकी प्रार्थना करता हूँ।

सलमाको मराठोंकी कैदमें ऐसी आशा न थी। वह समझनेकी कोशिश करने लगी कि शिवाजी इनसान हैं या फरिश्ता। उसके श्वसुरके यहाँ लड़ाईमें जीती हुई सैकड़ों स्त्रियाँ लायी जाती थीं। कुछको तो चुनकर मजबूर बनाकर वह अपने लिये रख लेता और बाकियोंको सिपाहियोंमें बाँट देता। वे बेआबरू की जातीं और इसलाम कबूलनेको मजबूर बन जातीं। उसकी आँखोंसे अश्रुओंकी धारा फूट पड़ी।

कुछ दिन बाद सलमा विदा हो रही थी, यहाँसे अपने ससुराल। शिवाजीने अपनी मुँहबोली छोटी बहनको गले लगाकर विदाई दी। खच्चरों और घोड़ोंपर दहेजका सामान था। सुनहले-रुपहले पर्देसे ढँकी पालकीकी बगलमें सुरक्षाके लिये घोड़ेपर चढ़ा हुआ जा रहा था अम्बाजी सोनदेव! अब वह अपने महाराजकी थातीको वापस लौटाने जा रहा था।

पालकी जब आयी थी तो सलमा सिसक रही थी चिन्ता और आशंकाके आँसुओंसे और अब जब पालकी जा रही थी तो भी वह सिसक रही थी प्यार, आनन्द और उल्लासभरे आँसुओंसे। [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम

(श्रीगदाधरजी भट्ट)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम भारतीय संस्कृतिकी चरम प्रतिष्ठाके प्रतीक हैं। जीवनका ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसमें वे आदर्श न हों। श्रीराम शक्ति, शील एवं सौन्दर्यके अद्भुत समन्वय हैं। ऐसा उदात्त चरित्र भारतीय जीवनमें अद्वितीय है। वेद, उपनिषद् एवं धर्मशास्त्रोंमें धर्मका स्वरूप विस्तारपूर्वक विवेचित है, किंतु उसका व्यावहारिक स्वरूप देखना हो तो श्रीराममें देखें। श्रीरामने धर्मको व्यावहारिक रूप दिया है। अत: उनको धर्मका साक्षात् रूप कहा गया है—

'रामो विग्रहवान् धर्मः।'

श्रीरामके उदात्त चरित्रको सर्वप्रथम वाल्मीकिजीने, तत्पश्चात् श्रीतुलसीदासजीने जैसा गौरव एवं भव्य रूप प्रदान किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीरामके गुण अपार हैं। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि अपने आदिकाव्यके लिये ऐसा ही लोकनायक खोजते हैं जो सर्वगुणसम्पन्न हो, धर्म एवं सदाचार-निकषपर पूर्ण खरा हो। श्रीराम विष्णुके समान वीर्यवान्, पीनबाहु, विशालवक्ष, उदारमना, गम्भीर, ओजस्वी, संहारकर्ता एवं प्रजापालक हैं। वे धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ एवं लोककल्याणकारी हैं। श्रीराम सम्पन्नता, धर्मरक्षा, धर्माचरण आदि गुणोंसे समन्वित हैं। वेद, वेदांग, धनुर्वेद एवं समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। वे समुद्रकी भाँति गम्भीर, हिमालयके समान धैर्यवान् हैं। चन्द्रमाके समान मनोहर हैं, क्षमामें पृथ्वीके सदृश हैं। त्यागमें कुबेर और सत्यमें साक्षात् धर्मराज हैं।

वाल्मीकिजीने गुणावलीमें जो आदर्श मानवीय गुण निरूपित किये हैं, वे सभी श्रीरामके व्यक्तित्वमें पुंजरूपमें एकत्र हैं। महर्षिके अनुसार श्रीराम अत्यन्त रूपवान् हैं। तुलसीने भी *'कोटि मनोज लजावनिहारे'* कहकर श्रीरामके अप्रतिम सौन्दर्यका वर्णन किया है। वे दृढ़ भक्त, मृदुभाषी, स्थितप्रज्ञ एवं सत्यवादी हैं।

श्रीरामकी सत्य-प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—**'रामो द्विर्नाभिभाषते'** अर्थात् श्रीरामकी वाणीमें द्वैधता नहीं है, उनका वचन अचल एवं अटल है—*'प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥'* सत्यके प्रति श्रीरामकी अनन्य निष्ठा है, वे सत्यके मार्गसे कभी विचलित नहीं होते—

नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः।

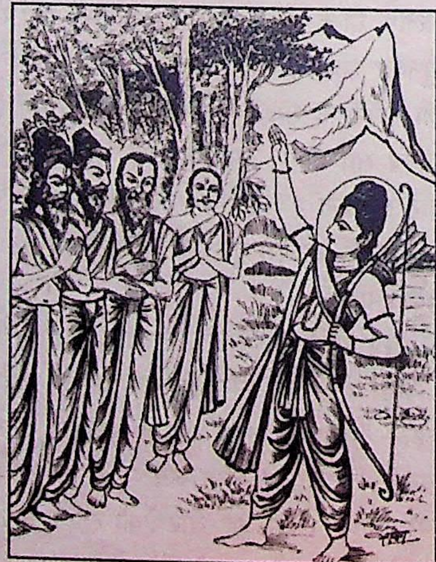
भारतीय जीवनका प्राण सत्य है। एकमात्र सत्यसे दया, दान, त्याग, तपस्या-जैसे गुण स्वतः उद्भूत हो जाते हैं। सत्यके कारण सभी गुणोंका श्रीराममें समावेश है। श्रीराम सत्यके प्रतीक हैं।

महर्षि वाल्मीकिके समान गोस्वामी तुलसीदासजी भी श्रीरामका शील (चरित्र) वर्णन करते हुए अघाते नहीं हैं।

'सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।' (विनयपत्रिका)

श्रीरामकी स्थितप्रज्ञता—सुख-दु:खमें समरसताका अवलोकन करें। राज्यपदप्राप्तिके सुखद समाचारसे उनको प्रसन्नता नहीं है, वनवासकी दु:खद बातसे कोई मलिनता नहीं है। ऐसी श्रीरामकी ही महिमा है।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें श्रीरामको आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र एवं आदर्श राजाके रूपमें चित्रित करते हुए जीवनके विविध क्षेत्रोंमें उनके अनुपम शीलकी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। अद्भुत सौन्दर्य एवं अनुपम शीलके साथ-साथ श्रीरामके चरित्रमें अमित शक्तिकी अवतारणा भी की है। समाजकी मर्यादा एवं लोक-धर्मकी रक्षाके लिये दण्डकारण्यमें वे मुनियोंके समक्ष असीम शक्तिका



सम्यक् प्रयोगकर राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।

(रा०च०मा० ३।९)

श्रीरामके चरित्रमें आचार एवं विचारका अनूठा समन्वय है। हमारी संस्कृतिमें आचारको प्रथम धर्म कहा गया है—

आचारः प्रथमो धर्मः।

श्रीरामके चरित्रको किसी भी दृष्टिसे परखें, वह सर्वथा आदर्श, अनुकरणीय एवं सदाचारसमन्वित है। वेदविहित आचार मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें प्रतिष्ठित हैं।

श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन श्रेष्ठ मानवमूल्योंके लिये समर्पित रहा है। वे सदाचारकी प्रतिमूर्ति हैं। जिस रामराज्यकी स्थापना हमारे जनतन्त्रका आदर्श है, वह सदाचारपर ही प्रतिष्ठित था। यदि रामराज्यमें हमारी निष्ठा है तो श्रीरामके आदर्श आचरण एवं विचारको हमें मान्यता एवं व्यावहारिक रूप देना होगा।

रामराज्यका आधार है—लोकाराधन या लोककल्याण। तदर्थ श्रीराम स्नेह, दया, सुख; यहाँतक कि प्राणप्रिय जानकीका भी परित्याग करनेमें व्यथाका अनुभव नहीं करते।

श्रीराम हमारे राष्ट्रीय जीवनकी धड़कन हैं। वे जन-जनमें, कण-कणमें विद्यमान हैं। भारतीय बालकका जन्म श्रीराम-जन्मके बधाई गीतोंके साथ होता है, श्रीरामकी मधुर लोरियोंमें रामललाके संश्लिष्ट चित्र मानस-पटलपर उभरते हैं, विवाहके मांगलिक गीतोंमें दूलह रामके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। जीवनके अन्तिम क्षणोंमें भी भगवान् श्रीरामके नामका नित्य स्मरण होता रहता है। इस प्रकार हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रारम्भसे अन्ततक श्रीरामसे ओतप्रोत है।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय आदर्शोंके परिप्रेक्ष्यमें देखें तो श्रीरामके उदात्त जीवनमें असत्य एवं अन्धकारका, सत्य एवं प्रकाशका तुमुल युद्ध अभिव्यक्त हुआ है। उनका समस्त जीवन अनैतिकता एवं अधर्मके विरुद्ध प्रबल संघर्ष है। अन्तमें विजय सत्य एवं प्रकाशकी होती है। श्रीरामने नारी अहल्याका उद्धार किया। भोगप्रधान आसुरी प्रवृत्तियोंका नाश किया, जिनका नियामक रावण था। श्रीरामने संस्कार-प्रधान भारतीय आर्य-जीवनको आसुरी संस्कृतिसे मुक्त किया एवं उदात्त गुणोंद्वारा आत्मिक शक्तियोंके योगसे रावणपर विजय प्राप्त की।

असत्य-अधर्मके प्रति यह युद्ध हमारे वर्तमान जीवनमें भी चल रहा है। आसुरी प्रवृत्तियाँ प्रबल हो रही हैं। श्रीरामका उदात्त चरित्र विजय प्राप्त करनेका सन्देश दे रहा है। अतः श्रीरामको मन-मन्दिरमें प्रस्थापित करें। आदर्श आचरण एवं धर्मानुसरणसे अपने जीवनको राममय बनायें। जबतक हिमालय एवं गंगा-यमुनाकी धारा स्थित है, तबतक श्रीरामके आदर्श चरित्रकी कथा अक्षुण्ण रहेगी—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

(वाल्मीकीय रामायण)

'ले हाथों में जयमाल मिलें'

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')

दुखियों में दुख में दीनों में दुर्दिन में, दीनदयाल मिलें।
तू खोज रहा सुख-सुविधा में, दुख-दुविधा में गोपाल मिलें॥
जब तक रत है जग-लोगों में, है मस्त जगत के भोगों में।
तू देख न सकता है उनको, वे अलग कहीं जन-पाल मिलें॥
गौरव रौरव जब मानेगा, अपमान मान सम जानेगा।
निन्दा सुनकर जब नाच उठे, प्रभु से मन के सुरताल मिलें॥
जब उनके लिये विकल होगा, कटना मुश्किल पल-पल होगा।
तब देर न होगी किंचित् भी, वे करके कृपा कृपाल मिलें॥
'हरिदास' हार जब जायेगा, पद कमलों में पड़ जायेगा।
वे प्रेम-सुधा-रस बरसाते, ले हाथों में जयमाल मिलें॥

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! पानेके प्रलोभनमें पराधीनता और जीनेके प्रलोभनमें मृत्युका भय विद्यमान है। यदि इन दोनों प्रकारके प्रलोभनोंका अन्त कर दिया जाय, तो स्वाधीन अमर जीवन प्राप्त हो जाता है। यह जानते हुए भी कि किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था आदिमें स्थायित्व नहीं है, फिर भी इनके पानेका प्रलोभन रखते हैं और यह जानते हुए भी कि शरीर हमेशा नहीं रहेगा, इसे सदैव बनाये रखनेकी सोचते हैं। क्या यह अपनी जानकारीका सरासर अनादर नहीं है? इसपर साधक महानुभावोंको भली प्रकार मनन करना चाहिये।

अपने कल्याणका अर्थ क्या है? अपनी प्रसन्नताके लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता न रहे। अर्थात् हमें अपने लिये किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिकी आवश्यकता न हो। हम स्वयंमें आनन्दित रहें।

सुन्दर समाजके निर्माणका अर्थ क्या है? जिस समाजमें सभी प्राणियोंके अधिकार सुरक्षित हों। कोई किसीके अधिकारका अपहरण न करता हो। गुण, परिस्थिति, कर्म आदिकी भिन्नता होनेपर भी आपसमें प्रीतिकी एकता हो। जहाँ बलद्वारा बात मनवानेकी आवश्यकता न हो।

सुन्दर समाजका निर्माण किसी राष्ट्रके द्वारा कभी हुआ नहीं, हो सकता नहीं। प्रत्येक भाई-बहन यह निर्णय कर लें कि इस क्षणसे हम बलका दुरुपयोग नहीं करेंगे। बस, स्वतः सुन्दर समाजका निर्माण हो जायगा।

अतः बलका सदुपयोग और विवेकका आदर करना ही हर मानवका पुरुषार्थ है। इसी पुरुषार्थसे अपना कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण होता है।

यह सर्वविदित है कि समस्त विश्वका आश्रय और प्रकाशक एक ही है, दो नहीं। यानी विश्व जिसका कार्य है, वह कारण एक ही है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि कारणमें एकता होनेपर भी कार्यमें भिन्नता होती है। इतना ही नहीं, प्रत्येक कार्य अपने कारणके आश्रित ही रहता है। यानी कार्यमें सत्ता कारणकी ही होती है, पर कारणकी अपेक्षा कार्यमें गुणोंकी भिन्नता होनेके कारण एकतामें अनेकता भासित होती है।

यदि सर्वात्मभाव स्वीकार कर लिया जाय, यानी यह जान लिया जाय कि विश्वकी प्रत्येक वस्तु-व्यक्ति आदि विश्वरूपी सागरकी ही लहरें हैं अथवा आस्थाके आधारपर यह मान लिया जाय कि जो सारे विश्वका आश्रय तथा प्रकाशक है, उसीकी अनुपम लीलाके रूपमें यह सारा विश्व है, तो अनेकतामें एकताका दर्शन बहुत ही सुगमतापूर्वक हो सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि विश्वमें राग-द्वेषका अन्त हो जायगा और प्रेमका प्रादुर्भाव होगा।

प्रीति एक ऐसा अलौकिक तत्त्व है, जिसके प्रादुर्भावसे अकर्तव्य और राग-द्वेषकी जड़ ही कट जाती है। अकर्तव्यके नाशमें कर्तव्यपरायणता निहित है, जिससे सुन्दर समाजका निर्माण होता है। आसक्तिके नाश होनेपर असंगता प्राप्त होती है, जिससे अपना कल्याण होता है, हम स्वाधीन होते हैं। प्रीतिके प्रादुर्भावसे मानव हृदयशील बनता है और दूसरोंके काम आता है।

मानव-समाजमें जो आज अनर्थ दिखायी दे रहा है, उसका मूल कारण अकर्तव्य ही है। देहाभिमानमें आबद्ध प्राणी ही अकर्तव्यमें प्रवृत्त होता है। ॐ आनन्द!

संसारकी कोई भी वस्तु विश्वास और भरोसा करनेके योग्य नहीं है। उन लोगोंपर परमेश्वरकी अत्यन्त कृपा है, जो अपना आश्रय और विश्वास केवल परमात्मापर रखते हैं और हृदयसे सच्चे साधु हैं।

वस्तुतः संसारकी कोई भी वस्तु अविनाशी नहीं। जो मनुष्य इन वस्तुओंपर भरोसा करता है (और अपनी प्रसन्नताका निर्भर परमात्मापर नहीं रखता), वह अवश्य हानि उठाता है।

ज्यों ही आप बाह्य पदार्थोंकी ओर प्रेरित होकर उनको पकड़ना और अपनाना चाहते हैं, त्यों-ही वे आपको छलकर आपके हाथसे निकल भागते हैं। किंतु जिस क्षण आप इनकी ओर पीठ फेरोगे और प्रकाशोंके प्रकाशस्वरूप अपने निजात्माकी ओर मुख करोगे, उसी क्षण परम कल्याणकारक अवस्थाएँ आपकी खोजमें लग जायँगी। यही दैवी विधान है।

[स्वामी श्रीरामतीर्थजी]

कैसे हो गोरक्षा एवं गोवंश-संवर्धन

(श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी)

आचार्य विनोबा भावेके आदेशानुसार देवनारमें २५ वर्षोंसे अधिक समयसे सत्याग्रह हो रहा है और आगे भी जारी रहेगा। आजके परिप्रेक्ष्यमें यह सोचनेका विषय है कि क्या गोरक्षाका कानून किसानोंके हितमें होगा?

पहले किसी किसानके यहाँ बछड़ा पैदा होता था तो किसान उस खुशीको बेटेके जन्मकी भाँति मनाता था, लेकिन आज बछड़ा पैदा होनेपर वैसी खुशी नहीं दिखती। इस मूल मुद्देकी अनदेखीकर क्या गोसंवर्धन सम्भव है?

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सभी तरहके मांसका विरोध होना चाहिये, जिसमें गोमांसका अधिक-से-अधिक विरोध होना चाहिये। मांसाहारसे खाद्यान्न-संकट बढ़ता है एवं वैश्विक तापमान भी, साथ ही साथ पानीकी भी अधिकाधिक बरबादी होती है। एक किलो गोमांस या भैंसके मांसके उत्पादनमें २०,००० ली० पानी लगता है। देवनार-जैसे बूचड़खानेमें २० लाख लीटर पानीकी बरबादी प्रतिदिन होती है। वहाँकी नालीका पानी लाल रंगका होता है, जिसके कारण तटीय सामुद्रिक क्षेत्र भी प्रदूषित होता है। इसी प्रकार अन्य स्थानोंपर भी नदी, तालाब बड़ी मात्रामें बूचड़खानेके कारण प्रदूषित होते हैं। दूसरी ओर जलाशयोंका प्रदूषण इतना अधिक हो गया है, जिसके कारण हजारों टनकी मात्रामें मछली एवं कहीं-कहीं घड़ियाल भी मर गये।

बूचड़खानोंमें ठोस कचरेको नष्ट करनेके लिये कोई व्यवस्था नहीं होती, यहाँतक कि यह व्यवस्था दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई-जैसे बड़े महानगरोंमें भी नहीं है। बूचड़खानोंसे शरीरके शेष भाग जैसे—अँतड़ियाँ, टाँगें, पेटका खाना आदि शहरी कचरेके साथ मिला देते हैं, जो गैर कानूनी है। मछलियाँ एवं घड़ियाल काफी हदतक प्रदूषणको सह लेते है, लेकिन अचानक एक ऐसा समय आता है कि वे तुरंत मर जाते हैं। अत: ऐसी स्थितिमें मछलीको भी न खाना ही उचित है। इसी प्रकार अण्डों एवं मुर्गियोंके उत्पादन एवं रख-रखावमें भी अधिकाधिक क्रूरता भरी पड़ी है, जबकि प्रत्येक नागरिक एवं सरकारकी जिम्मेदारी है कि वह सभी प्राणियोंके प्रति (धारा ५१ ए-जी, के अन्तर्गत) करुणा भाव रखे, परंतु इसपर न तो सरकार ध्यान देती है और न ही कोई संस्था। इस धाराके प्रचार एवं पालनपर जोर डालनेकी बहुत अधिक आवश्यकता है। स्कूलोंमें विद्यार्थियोंके माध्यमसे इन सभी तथ्योंका प्रचार किया जा सकता है, ताकि नयी पीढ़ी इस विषयमें जागरूक हो सके। दिल्लीमें करीब १०५ स्कूलोंमें शाकाहारका प्रचार हुआ, जिसमें मुसलिम एवं ईसाई संस्थायें भी शामिल हैं, लेकिन किसीने विरोध नहीं किया।

बछड़ोंका जीवन बचानेके लिये खेतों तथा अन्य कार्योंके लिये बैलोंकी उपयोगिता बढ़ानी आवश्यक है जैसा कि पहले उनका उपयोग होता था। लेकिन अब ट्रैक्टरके आनेके कारण बैल खेतसे बाहर हो रहे हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पूर्व कृषिमन्त्री भारत सरकारने एक पत्रके उत्तरमें जानकारी दी थी कि एक ट्रैक्टरके आनेसे १०-१२ बैल बेकार हो जाते है। देशमें करीब ३५ लाख ट्रैक्टर हैं, इस प्रकार करीब ४ करोड़ बैल बेकार हो गये और इसी कारण गोमांसमें वृद्धि हो रही है, सरकारी आँकड़े निम्न हैं—

क्र०सं०	सन्	गोमांस-उत्पादन (टनमें)
१.	१९८१	७८,०००
२.	१९८५	१,५०,०००
३.	१९८७	२,३९,०००
४.	१९८९	८,४५,०००
५.	१९९०	१२,७१,०००
६.	१९९५	१३,६५,०००
७.	२०००	१४,४२,०००
८.	२००३	१४,९०,०००

देवनारमें भी बैल आते हैं, गाय शायद नहीं आती, परंतु कोलकाता एवं चेन्नईमें १-२ गाय भी देखी गयी हैं। दु:खकी बात है कि गोशालाएँ भी बैलोंका व्यवहार न करके ट्रैक्टर रखना पसन्द करती हैं, जो उचित नहीं है।

भारतसरकारने इस वर्ष ट्रैक्टरपर अनुदान रु० ३० हजारसे बढ़ाकर ४५ हजार कर दिया। क्या हम सक्षम हैं कि ट्रैक्टरोंकी संख्या न बढ़ाई जाय, बल्कि कम की जाय,

ताकि बैलोंका उपयोग हो? क्या हम कभी इस विषयपर सोचते भी हैं कि बैलोंका उपयोग वर्तमान स्थितिमें कैसे बढ़े? यदि बैलोंका उपयोग नहीं होगा तो गो-हत्या तो दिनों-दिन बढ़ती ही जायगी, जैसा कि उपर्युक्त सरकारी आँकड़ोंसे स्पष्ट है।

यदि सोचेंगे नहीं तो करेंगे कैसे, कामधेनु बैल-चालित ट्रैक्टर (मल्टी टूल केरियर)-का निर्माण कराया गया, जिसका भारत सरकारद्वारा सफल परीक्षण हुआ और इस संयन्त्रको बढ़ानेके लिये राष्ट्रीय किसान-आयोग एवं अन्य सरकारी विभागोंने इसे उपयोगी बताकर इसके उपयोगपर बल दिया है।

कामधेनु बैलचालित ट्रैक्टरमें मुख्य फ्रेममें कुर्सी लगी होती है, जिसके ऊपर लगे छातेकी छाँवमें किसान खेतके सभी कार्य सुगमतासे करते हैं। कामधेनुसे देशी हलकी तुलनामें कम-से-कम तीन गुना अधिक कार्य होता है। इससे उत्पादकतामें बढ़ोत्तरी, कृषि-लागत एवं मेहनतमें कमी होती है। बैलोंको आराम मिलता है।

कामधेनुके साथ दो बैल किसानके लिये वरदान-स्वरूप है, जुताईसे बुआईतकके सभी काम कुर्सीपर बैठकर आरामसे किये जा सकते हैं, लेकिन अफसोसकी बात है कि राजस्थान, मध्य-प्रदेश, कर्नाटक आदिने भी इस कार्यक्रममें कोई रुचि नहीं ली। यद्यपि आन्ध्र-प्रदेशने रुचि ली और ५० प्रतिशत अनुदान देनेकी योजना स्वीकृत कर दी है। उत्तराखण्डमें भी यह काफी प्रचलित हुआ; क्योंकि वहाँ पहलेसे ही ९० प्रतिशत अनुदान था। जब राज्य सरकारें सक्रिय होंगी, तभी बैलोंका उपयोग फिरसे किया जायेगा और तभी बैलोंकी संख्या भी बढ़ेगी। प्रसन्नताकी बात है कि हरियाणा सरकार भी ५० प्रतिशत अनुदान देनेपर राजी हो गयी है, जिसकी अधिकतम राशि रु० १९,९५० है। आन्ध्र प्रदेशमें यह अधिकतम राशि रु० ३०,००० है।

अब बैलचालित पम्प, जेनरेटर और ग्रामीण उद्योगोंके लिये भी उपकरण उपलब्ध हैं और शीघ्र ही एक बैलसे चलने वाली बैलगाड़ियाँ भी मिलेंगी, जो दो बैलोंके बदले एक बैलसे भी २-३.५ टन माल ढो सकेंगी। तथापि बैलोंकी उपयोगिताकी तरफ किसीका ध्यान नहीं जाता है।

एक और विशेष बात है, योजना-आयोग मानवीय एवं पशुशक्तिके उपयोगको ऊर्जा-नीतिमें सम्मिलित करनेको राजी नहीं है। यदि आयोग इस ओर ध्यान दे तो एक वैकल्पिक ऊर्जा-स्रोत तो देशको प्राप्त ही होगा, साथ ही गोवंशकी रक्षा भी हो जायगी।

ब्रज-लीला

(श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन')

ब्रज में करत श्याम हुरदंग।
चोरी करत नित्य माखन की, लै लरिकन को संग॥ ब्रज०॥
बरजोरी सों छीन मटकिया, करत गोपिअन तंग।
बरजे बात न मानत तनिकउ, भरि उर अधिक उमंग॥ ब्रज०॥
देहिं उलहनो ग्वालिन जसुमति, कहि-कहि सकल प्रसंग।
सुनत रिसाइ बहावत दृग सों, अँसुअन गंग-तरंग॥ ब्रज०॥
रूठि पटकि झट लकुटि कँवरिया, बोलत बचन दबंग।
तू पतियाहि मातु ग्वालिन सों, करत मोहिं नित तंग॥ ब्रज०॥
मैं नहिं जाउँ चरावन गैयाँ, और न रहिहौं संग।
पुलकित मातु जसोमति तत्क्षण, लेहिं उठाय उछंग॥ ब्रज०॥
बरनि न सकि शिव, शेष, सारदा, ऐसो अगम प्रसंग।
उमगत प्रेम 'सनातन' हिय महँ, चाहत पद-रज संग॥ ब्रज०॥

भगवान्का निरन्तर स्मरण

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

इस विश्व-ब्रह्माण्डमें जो सबसे अधिक प्यारा है; प्राणोंका आधार है, उसको एक क्षणके लिये भी भुलाना सम्भव नहीं है। याद नहीं करनेपर भी वह जबरदस्ती याद आता है और स्मरण नहीं करनेपर भी बलात् उसकी स्मृति होती है। वह मन-इन्द्रिय-प्राणोंपर इस प्रकार छा जाता है कि उसको छोड़कर अन्य कुछ नजर ही नहीं आता; जिधर देखो, उधर वही वह दृष्टिगोचर होता है। उसके एक-एक नामके उच्चारणमें ऐसा सुख मिलता है, जिसके सामने मुक्तिका सुख भी तुच्छ हो जाता है। शरीर-संसारके सम्पूर्ण व्यवहार उसके चरणकमलोंकी पूजाकी सामग्री बन जाते हैं तथा जीवन सुगन्धित पुष्पकी भाँति उस नटवरके सुरमुनिपूजित चरणाम्बुजोंपर समर्पित हो जाता है।

भगवान्का निरन्तर स्मरण कैसे हो—इस प्रश्नका उपर्युक्त उत्तर है। भगवान्ने भी कहा है—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

(गीता ७। १७)

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमाभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है; क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

भगवान्के अनन्य प्रेमी भक्तके लिये भगवान्का निरन्तर स्मरण ही सबसे बढ़कर सुखदायी, प्राणोंसे भी अधिक प्यारा एवं अनन्य कर्तव्य है। भगवान्को भूलना उसके लिये मरणसे भी अधिक दुःखदायी एवं महान् विपत्ति है—

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

परमभक्त हनुमान्जीने भी यही कहा है—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(रा०च०मा० ५। ३२। ३)

भगवान्का प्रेमी भक्त तीनों लोकोंके ऐश्वर्यका प्रलोभन देनेपर भी एक क्षणके लिये भी भगवान्के चरणकमलोंका चिन्तन नहीं छोड़ता—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ५३)

'यदि भगवान्के भक्तसे कहा जाय कि तुम आधे क्षणके लिये भी भगवान्के चरणोंका चिन्तन छोड़ दो और इसके बदलेमें त्रिलोकीका सम्पूर्ण वैभव ले लो तो भी वह इस बातको स्वीकार नहीं करता। उसका चित्तरूपी भ्रमर तो अचंचलरूपसे भगवान्के उन चारु चरणकमलोंमें ही लगा रहता है, जिनको निरन्तर खोजनेपर भी देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते।'

बल्कि तीनों लोकोंके ऐश्वर्यको तो वह पहले ही वमनके समान छोड़ चुका होता है—

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यनिधि श्रीभगवान्के मंगलमय स्वरूपका निरन्तर स्मरण निःसन्देह साधनाकी अत्युच्च स्थितिका परिचायक है। इससे सहज ही भगवान्के दर्शन हो जाते हैं। श्रीभगवान्ने स्वयं कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

प्रारम्भमें भगवान्का निरन्तर स्मरण करना कठिन प्रतीत हो सकता है; किंतु यह कठिनता हमारे अपनेद्वारा ही उत्पन्न की हुई है एवं हम स्वयं ही इसको दूर भी कर सकते हैं। अतः निराश होनेकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। हमारा मन चौबीसों घण्टे संसारका ही चिन्तन करता रहता है; क्योंकि हमने संसारके साथ अपना सम्बन्ध मान रखा है तथा सांसारिक प्राणी, पदार्थ, परिस्थितियोंको प्राप्त करना ही अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया है। संसार असत् है, अतः इसकी प्राप्तिका उद्देश्य भी असत् है और इस उद्देश्यसे जो कुछ प्राप्त होगा, वह भी असत् ही होगा अर्थात् कुछ भी नहीं मिलेगा। हमारा आजतकका अनुभव यही तो साबित करता

है। हमारे अनन्त जन्म हो चुके हैं तथा प्रत्येक जन्ममें हमें सभी प्रकारके सुख-दुःख, धन-वैभव, परिवार, माता-पिता, पुत्र, पत्नी आदि मिले हैं; किंतु वे सब आज कहाँ हैं? वह सब 'नहीं' में बदल गया; क्योंकि वह असत् था। इसी प्रकार वर्तमान जन्मके भी सभी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियाँ, धन-वैभव, पद, अधिकार, परिवार आदि असत् हैं एवं अन्ततः 'नहीं' में ही बदल जायेंगे। इनको अपने जीवनका उद्देश्य बनाकर इनका सतत चिन्तन करते रहना बड़ा भारी दुर्भाग्य है। इसके विपरीत यदि हम संसारसे अपने माने हुए सभी कल्पित सम्बन्ध तोड़कर केवल एक भगवान्के साथ ही अपना अनन्य सम्बन्ध स्थापित कर लें (जो कि पहलेसे ही वास्तविक रूपसे स्थापित है, उसको तो केवल स्वीकारमात्र ही करना है) तथा भगवान्की प्राप्तिको ही अपने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बना लें, तो मन स्वतः ही भगवान्के अनन्य चिन्तनमें लग जायगा, इसके लिये कोई अलग प्रयास नहीं करना पड़ेगा। यह बात बहुत ही गम्भीरतापूर्वक समझनेकी है कि हमारा मन वहीं लगता है, जहाँ हम लगते हैं। हमारा मन नित्य-निरन्तर भगवान्में ही लगा रहे, इसके लिये यह आवश्यक है कि हम केवल भगवान्को ही अपना मानें तथा केवल उन्हींको अपना 'परम प्रियतम' सर्वाधिक प्यारा बना लें। हम बुद्धिके द्वारा यह सुनिश्चित कर लें कि केवल एक भगवान् ही मेरे परम प्रेष्ठ, परम श्रेष्ठ और परम प्रापणीय हैं। भगवान्ने स्वयं आदेश दिया है कि माता-पिता, भाई, पुत्र-पत्नी, शरीर, धन, घर-परिवार आदिसे ममता हटाकर केवल मेरेसे ही प्रेम करें—

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रियः॥

(श्रीमद्भा० ३।९।४२)

'विधाता! मैं आत्माओंका भी आत्मा और स्त्री-पुत्रादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय हैं। अतः मुझसे ही प्रेम करना चाहिये।'

गीतामें भी भगवान्ने बताया है कि मैं सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

(गीता १०।२०)

मछलीको जिस प्रकार जल प्यारा होता है, उसी प्रकार हमारे आत्मस्वरूप भगवान् हमें प्यारे लगने चाहिये।

भगवान् ही हमारी आत्मा हैं—यह समझनेपर उनमें स्वाभाविक ही अनन्य प्रेम होगा और उनका निरन्तर चिन्तन बना रहेगा; क्योंकि संसारमें सभी लोग आत्माके लिये और आत्मासे ही प्रेम करते हैं—

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

भगवान्के भक्तको भगवान् जितने प्यारे लगते हैं, उनका नाम भी उतना ही प्यारा लगता है; क्योंकि स्वयं भगवान् ही अपने नामरूपमें प्रकट होते हैं—

ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकानामैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः।
आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च॥

'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका जो ऐश्वर्य एवं समस्त चैतन्य पदार्थ जिनका अंशमात्र हैं, ऐसे तेजःस्वरूप श्रीकृष्ण ही नामरूपसे आविर्भूत होते हैं। अतः वह श्रीकृष्ण नाम ही मेरा आराध्य, साध्य, साधन और जीवन है।'

भगवान्का नाम हमारी जिह्वापर आ गया तो स्वयं भगवान् ही हमारी जिह्वापर आ गये, यह मानकर नामजप करनेवाला साधक बहुत जल्दी भारी लाभ उठा सकता है। ऐसे भक्त तो मुक्तिकी भी परवाह नहीं करते, अपितु मुक्तिको तो दूरसे ही नमस्कार कर लेते हैं। गोस्वामीजीने लिखा है—

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥

(रा०च०मा० ७।११९।७)

एक नामप्रेमी भक्त एवं मुक्तिका वार्तालाप बड़ा ही रोचक है—

का त्वं मुक्तिरुपागतास्मि भवती कस्मादकस्मादिह
श्रीकृष्णस्मरणेन देव! भवतो दासीपदं प्रापिता।
दूरे तिष्ठ मनागनागसि कथं कुर्या अनार्यं मयि
त्वद्गन्धान्निजनामचन्दनरसालेपस्य लोपो भवेत्॥

'भक्त पूछता है—तू कौन है?' मुक्ति जवाब देती है—'मैं मुक्ति हूँ, आपकी सेवामें आयी हूँ?' भक्त पूछता है—'तुम अचानक यहाँ क्यों आयी हो?' मुक्ति पुनः उत्तर देती है—'हे देव! श्रीकृष्णस्मरणके प्रभावसे मैं आपकी दासी हो गयी हूँ। मुझे अपनी सेवामें रख लीजिये।' इसपर भक्त घबराकर कहता है—'अरी! दूर खड़ी रह। मुझ निरपराधीपर क्यों कुठाराघात कर रही हो? तुम्हारी तो गन्धमात्रसे मेरे नामरूपी चन्दनके सुगन्धालेपका लोप हो जायगा।'

इस 'कृष्ण' नाममें जो माधुर्य है, वह विश्व-ब्रह्माण्डमें किसी भी अन्य पदार्थमें उपलब्ध नहीं है—

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं च पीतं पयः
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः।
सत्यं ब्रूहि मदीयजीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥
(रसगंगाधर)

'संसारमें बार-बार भ्रमण करते हुए जीवने द्राक्षा और शर्कराका आस्वाद लिया, मधुर दुग्धका पान किया, स्वर्गमें जाकर सुधापान तथा अप्सराओंके अधरोंका पान भी किया; परंतु क्या उसको 'कृष्ण' इस वर्णद्वयकी वास्तविक मधुरिमाका आभास भी और किसी भी अन्य वस्तुमें मिला? अर्थात् नहीं मिला।'

भगवन्नामरसिक, महाभागवत श्रीरूपगोस्वामीका भगवन्नामके सम्बन्धमें अनुभव कितना अद्भुत है—

तुण्डे ताण्डविनीरतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकदम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥

'जब कृष्णनाम जिह्वापर नृत्य करता है तब बहुत-सी जिह्वायें प्राप्त करनेकी तृष्णा बढ़ती है, जब श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश करता है तो अरबों कर्ण-प्राप्तिकी लालसा होती है। मनके प्रांगणमें नाममाधुरीके प्रवेश करनेपर शेष सब इन्द्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं। न जाने, 'कृष्ण' इन दो वर्णोंमें कितना अमृत भरा हुआ है।'

भगवत्प्रेम एवं भगवन्नामकी यह महिमा कितनी विलक्षण है। विश्व-ब्रह्माण्डमें किसी भी वस्तुसे इसकी तुलना नहीं की जा सकती। भगवती श्रीराधिकाजी भक्त-प्रवर उद्धवजीसे कहती हैं—

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्।
श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम्॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ९७।८-९)

'सम्पूर्ण वरोंमें श्रेष्ठतम वर श्रीकृष्णभक्ति या श्रीकृष्णदास्य ही है। पाँच प्रकारकी श्रेष्ठ मुक्तियोंसे हरिभक्ति ही श्रेष्ठ तथा गुरुतर है। ब्रह्मत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, अमृतत्वप्राप्ति, सिद्धिलाभ—इन सभीसे श्रीहरिका दासत्व प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है।'

भगवान्‌को ही अपना सर्वस्व समझनेपर तथा नामजपका दृढ़ अभ्यास होनेपर सभी साधकोंका ऐसा भाव बन सकता है। साधकके उद्देश्य एवं निश्चयमें जितनी अधिक दृढ़ता और सच्चाई होगी, उतनी ही जल्दी इसमें सफलता प्राप्त होगी। यदि भगवत्प्रेम या भगवत्प्राप्तिका दृढ़ उद्देश्य नहीं होगा अथवा मनमें किसी अन्य वस्तुके प्रति आकर्षण होगा तो भगवान्‌का निरन्तर स्मरण होना कठिन है।

जहाँतक क्रियात्मकरूपसे भगवान्‌के निरन्तर स्मरणका प्रश्न है, प्रत्येक क्रियाका प्रारम्भ और अन्त होता है। प्रत्येक क्रिया प्रकृतिमें होती है और प्रकृतिका कोई भी कार्य निरन्तर नहीं रहता। किंतु भगवान्‌का भक्त केवल क्रियात्मक रूपसे नहीं, अपितु भावात्मकरूपसे भगवान्‌से जुड़ता है, जो अनन्त है। इसीलिये हर समय चलते-फिरते काम-धन्धा करते हुए भी भक्तके हृदयमें भगवान्‌की मधुर स्मृति बनी रहती है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण गोपियाँ हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
(श्रीमद्भा० १०।४४।१५)

'जो गोपियाँ गायोंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें छिड़काव करते तथा झाड़ू लगाते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे, आँखोंमें आँसू भरे, गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णके गुणगान किया करती हैं, वे श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपियाँ धन्य हैं।'

भगवान्‌ने गीतामें भी अपने निरन्तर स्मरणकी आज्ञा दी है—**'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।'** (गीता ८।७), **'मच्चित्तः सततं भव।'** (गीता १८।५७) यह स्मरण क्रियाप्रधान नहीं, अपितु भावप्रधान है। हृदयमें भगवान्‌के प्रति प्रबल प्रेम रहनेपर उनको कभी भी भूलना सम्भव नहीं है। हरदम उनकी स्मृति बनी रहती है। यहाँ-तक कि सोनेसे जगनेपर भी उनको याद नहीं करना पड़ता, अपितु स्वतः स्मृति होती है।

साधकको तो यही भाव बनाना चाहिये कि उसको भगवान्‌के मंगलमय स्वरूपका स्मरण तथा उनके परमपावन नामका जप प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा एवं अमृतसे भी अधिक

मधुर लगता रहे। भगवान्‌को भूलना सहन न हो—**'तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।'** (नारदभक्तिसूत्र १९) इसमें स्वयंकी चेष्टा और पुरुषार्थकी भी आवश्यकता है; केवल भगवत्कृपाकी दुहाई देनेसे काम नहीं चलता; क्योंकि भगवत्कृपा साधकको पुरुषार्थहीन नहीं बनाती। अपने ऊपर भगवान्‌की अपार कृपा समझनेवाला साधक निरन्तर भजन किये बिना रह ही नहीं सकता। यदि निरन्तर भजन नहीं होता है तो यही समझना चाहिये कि हमने भगवत्कृपाको अभी यथार्थत: समझा ही नहीं है।

संसारके सुखोंमें फँसा हुआ व्यक्ति भगवान्‌का भजन-स्मरण नहीं कर सकता। अत: संसारके सुखोंके नाशमें भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा समझनी चाहिये। संसारके सुख तो ऐसे ही हैं, जैसे मल-मूत्रकी नालीमें पड़े हुए कीड़ेका सुख होता है। इस गन्दगीसे मुक्त होकर भगवान्‌के भजन-स्मरणके दिव्य आनन्दमें समय व्यतीत करना चाहिये। यदि एक क्षण भी भगवान्‌के भजन-स्मरणके बिना बीत जाय, तो इस प्रकार शोक करना चाहिये जिस प्रकार लुटेरोंद्वारा लूटा गया कोई सम्पत्तिशाली धनी व्यक्ति शोक करता है—

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्ते ध्यानवर्जिते।
दस्युभिर्मुषितेनेव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम्॥

भक्तिके मार्गमें महाभाग्यवती गोपियाँ ही आदर्श हैं—**'यथा व्रजगोपिकानाम्।'** (नारदभक्तिसूत्र २१) उनके जैसा भगवत्प्रेमका उदाहरण मिलना मुश्किल है। स्वयं भगवान् जिनकी बड़ाई करते हों, उनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करेगा? भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥

(श्रीमद्भा० १०।४६।४-६)

'उद्धव! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझको ही अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ। मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ। मेरे यहाँ चले आनेसे वे मुझे दूरस्थ मानती हैं और मेरा स्मरणकर अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्छित हो जाती हैं। वे मेरे विरहकी व्यथासे विह्वल हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं। मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्नसे अपने प्राणोंको किसी प्रकार रख रही हैं। मैं उनसे कहता था कि 'मैं आऊँगा'—वही उनके जीवनका आधार है। उद्धव! और तो क्या कहूँ, मैं ही उनकी आत्मा हूँ। वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं।'

भगवत्प्रेमका कैसा परमोज्ज्वल, विशुद्ध एवं साकार रूप है। भगवान्‌का सन्देश लेकर जब उद्धव व्रजमें गये और गोपियोंको योग सीखनेकी सलाह दी, तब गोपियोंने जो जवाब दिया, वह भी देखनेलायक है—

स्याम तन स्याम मन स्याम है हमारो धन,
आठों जाम ऊधौ हमें स्याम ही सों काम है।
स्याम हिये स्याम जिये स्याम बिनु नाहिं हिये,
आँधेकी-सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥
स्याम गति स्याम मति स्याम ही है प्रानपति,
स्याम सुखदाईसों भलाई सोभाधाम है।
ऊधौ तुम भए बौरे पाती लैके आए दौरे,
जोग कहाँ राखैं यहाँ रोम-रोम स्याम है॥

साधक उसीका नाम है, जो निरन्तर सावधान है, चौबीसों घण्टे अपने-आपको भगवान्‌से संलग्न करनेके लिये, भगवान्‌के लिये अपने-आपको होम देनेके लिये प्रस्तुत है। इस महान् उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये जितना भी त्याग किया जाय, थोड़ा है। भगवान्‌की तुलनामें यह असत् संसार किस गणनामें है, हमारे नहीं छोड़नेपर भी यह संसार हमसे निरन्तर छूट रहा है और एक दिन पूरा छूट ही जायगा। ऐसे तुच्छ संसारके लिये भगवान्‌को भूलना कोई सामान्य मूर्खता नहीं, बल्कि बड़ी भारी मूर्खता और दुर्भाग्य है। गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकामें लिखा है—

नहिं सतसंग भजन नहिं हरिको, स्त्रवन न राम-कथा-अनुरागी।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी॥
तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि, सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी।
सूकर-स्वान-सृगाल-सरिस जन, जनमत जगत जननि-दुख लागी॥

नाम-साधना

(समर्थ सद्‌गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

नामस्मरणमें कोई रुकावट नहीं आती

हम यह जाननेका प्रयत्न करें कि नामस्मरणके प्रति आस्था-निर्माण होनेके लिये एक-एक सत्कर्म करना सहज है या नामस्मरण विचारपूर्वक करना, सभी संतोंने लगनसे कहा है इसलिये नामस्मरण करना या जबरदस्तीसे करना सहज है। मान लो कि एक यन्त्र है। उसमें अनेक पहिये हैं और हम चाहते हैं कि यन्त्र चालू हो। किसीने केवल एक ही पहिया दबाकर यन्त्र चालू करनेकी कोशिश की तो यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि मशीन चालू होगी, लेकिन सभी पहियोंसे सम्बन्धित कोई बटन दबाया तो बिना किसी प्रयास या झिझकके मशीन चालू होगी। उसी प्रकार नामस्मरणकी कल यदि दबायेंगे तो सत्कर्मके सभी चक्र, सभी पहिये, बिना हिचक सहजतासे शुरू होंगे। अतः यदि हम चाहते हैं कि हर हालतमें और सहजतासे हमारा नामस्मरणका कार्य प्रारम्भ होना चाहिये तो किसी भी ढंगसे क्यों न हो, नामस्मरण करना शुरू कर देना चाहिये। यदि नामस्मरण करनेका हमारा इरादा दृढ़ होगा तो कोई भी रुकावट नहीं आ सकती। हमारा यह अनुभव होता है कि व्यवहारमें यदि हम कोई काम, भले असमर्थनीय क्यों न हो, करनेका निश्चय करते हैं तो वह कार्य सफल करके ही रुकते हैं। फिर नामस्मरणका निश्चय दृढ़ हो तो वह सफल क्यों नहीं होगा? चाहे कुछ भी करे, नामस्मरणके बिना कोई चारा ही नहीं है। और यदि कोई चारा ही नहीं है, यह हम निश्चय ही जानते हैं, तो नामस्मरणमें विलम्ब क्यों, टाल-मटोल क्यों? अतः कोई भी आशंका मनमें निर्माण करनेके बजाय नामस्मरण करते रहना ही सर्वोत्तम तथ्य है। फलतः ऐसा पछतावा हमें नहीं करना पड़ेगा कि हमने अपने जीवनका अनमोल समय बरबाद किया।

यह विश्व अनन्त आकर्षणोंसे भरा हुआ है। इनमेंसे कुछ वस्तुएँ देखनेपर या केवल उनका वर्णन सुननेपर भी हमारे मनमें लालसाका निर्माण होता है, फिर हम उन वस्तुओंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। अतः हम भगवान्‌से ऐसी प्रार्थना करें कि हे भगवान्! मुझे सुन्दर और मोहक वस्तुएँ मत दिखा; क्योंकि मैं मोहजालमें अटक जाऊँगा और धोखा खाऊँगा। भगवान्! मेरी प्रार्थना है कि मुझे ऐसी ही वस्तुएँ दिखा, जिनमें मेरा सच्चा हित है, जिन्हें मैं सुनूँ, जिनका मुझे स्मरण हो, जिनमें मुझे रुचि-निर्माण हो, जिनकी मुझे लगन लगे।

प्रह्लाद, द्रौपदी-जैसे भक्तोंने भगवान्‌से क्या माँगा? जो उन्होंने माँगा, वही हम माँगें। उन्होंने जैसी भगवान्‌के प्रति निष्ठा रखी, वैसी हम रखें। उनके मनमें जो वैराग्यभावना थी, वही अपने मनमें निर्माण करनेका प्रयत्न हमें करना चाहिये। जब हम प्रयत्न करेंगे तो गलतियाँ होंगी, लेकिन गलतियोंके लिये हमें पछतावा होना चाहिये। हमें कहना चाहिये—'भगवान्! मैं बहुत दोषी हूँ, अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कर दो, मुझे ऐसा बनाओ, जिससे मैं आपकी कृपा पानेके योग्य बनूँ।' यदि असलमें पछतावा हुआ तो विश्वास रखो, भगवान् कृपा करेगा ही। मुखमें नाम, हाथोंसे गृहस्थीका काम और हृदयमें समाधान रखना चाहिये।

नामस्मरणमें रहनेका मतलब होशमें होना

शराबियोंके जत्थेमें सभी शराबी शराबके नशेमें चूर होते हैं। उनमेंसे अगर किसीने शराब न पी हो तो बाकी सब शराबी उसे देखकर कहते हैं, 'यह होशमें नहीं है।' वैसे सच पूछो तो वही एक होशमें होता है, बाकी सब शराबी सचमुच ही बेहोश होते हैं। वैसे ही हम सब विषय-वासनाओंमें चूर होनेसे, जो नामस्मरणमें रत है उसे कहते हैं कि 'वह होशमें नहीं है।' वास्तविकता तो यह है कि नामके अलावा दुनियामें और कुछ नहीं है और जिसकी ऐसी दृढ़ धारणा है, वही सचमुच होशमें होता है। हम अवश्य ही भ्रममें होते हैं। हमारा भ्रम मिटानेके लिये तीन उपाय हैं—एक सद्‌विचार, दूसरा सत्संगति और तीसरा उपाय है नामस्मरण। भगवान्‌का विचार ही यथार्थ विचार है। किसी एक व्यक्तिको यदि कहा जाय कि तुम अपने अवयव और अपना रंग अलग रखकर हमारे पास आओ, तो वह आ नहीं

पायेगा; क्योंकि जहाँ वह है वहीं उसके अवयव और रंग होंगे। वैसे ही नाम, सन्त और भगवन्त एक-दूसरेसे चिपके हुए हैं, एक-दूसरेमें विलीन हो गये हैं। अतः जहाँ नामस्मरण होता है, वहाँ सत्संगति और भगवन्त होते ही हैं। जिस प्रकार गायके पीछे बछड़ा जाता है, वैसे ही नामस्मरण करनेपर उसके पश्चात् भगवान् आते ही हैं। आजकल कई प्रकारकी मशीनें निर्माण हुई हैं, अतः किसीके मनमें सवाल पैदा हो सकता है कि सन्तोंने भगवान्की प्राप्तिके लिये कोई मशीन क्यों नहीं ढूँढ़ निकाली? इसका उत्तर बहुत सरल है। ऐसी मशीन सन्तोंने बहुत पहले ही ढूँढ़ निकाली है। उस मशीनका नाम है—रामनाम। यह मशीन हर कोई पा सकता है। यह यन्त्र सब काममें ला सकते हैं। इसपर कभी जंग नहीं चढ़ता और यह कभी टूटती भी नहीं।

भक्त, भगवन्त और नाम एकरूप हैं। जहाँ नाम है, वहीं भक्त है और वहीं भगवान् भी हैं। इसलिये नाम सर्वश्रेष्ठ है। वही नाम हम निष्ठा और लगनसे लें। नाले-परनालेसे जो पानी बहता है, वह कितना गन्दा होता है? किंतु वही पानी नदीमें जा मिलता है, नदी सागरमें मिल जाती है। सागर सब पानीको सागर-रूप बना देता है। उसी प्रकार मनुष्य कितना भी पापी, दोषी, अपराधी हो, यदि वह नाम-रूप नदीमें घुल जाता है तो समझो वह राम-सागररूप ही बन गया। भगवान्को भूल जाना सबसे बड़ा पाप है। नामस्मरणके कारण भगवान्का स्मरण होता है; इसलिये नामस्मरणसे पाप मिट जाता है। अनाथ शब्द नाथके सिवाय नहीं है और नाथ (भगवान्)-को अनाथोंके सिवाय नाथत्व नहीं है। 'राम' सबके नाथ हैं। उनके नित्य स्मरणमें हम रहें। गृहस्थी वनवासके समान है। प्रभु रामके स्मरणसे गृहस्थीके संकट और दुःख तिनके-के समान हो जायँगे।

नामके लिये ही नाम जपें

नाम फिसलनके समान है। फिसलनपर घास उगती नहीं और उसपर पाँव पड़ गया तो फिसलता है। उसी प्रकार नाम कोई झंझट नहीं सहता, कोई विकार नहीं चाहता। उसे किसी उपकरणकी आवश्यकता नहीं होती। बीमार या तन्दुरुस्त, विद्वान् या अनपढ़, धनवान् या निर्धन, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, नातेदार या पराया इनमेंसे कोई होनेपर नामस्मरण रुकता नहीं और न होनेपर भी वह रुकता नहीं। नामस्मरणके अलावा हर किसी बातके लिये, हर किसी साधनके लिये शक्ति, बल, पैसा आदि बातोंकी या उपाधियोंकी जरूरत होती है, लेकिन नामस्मरण सर्वथा उपाधिरहित है, उपाधिशून्य है। इसलिये यदि हम भी नामस्मरण जब उपाधिरहित होकर करेंगे तभी हमें इससे प्रेम-निर्माण होगा। स्वयं उपाधिरहित होनेका मतलब है केवल नामके लिये नामस्मरण करना, केवल अपने परम कल्याणके लिये ही नामस्मरण करना, अन्य किसी बातके लिये नामस्मरण न करना।

नामस्मरण केवल उसीके लिये ही किया जाय। उसको अपनी आशा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षासे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये; केवल नामके लिये नाम लेनेसे मन अपने-आप अन्तर्मुख हो जाता है। नामस्मरणकी सहायतासे मन अन्तर्मुख करनेपर अनायास आनन्द प्राप्त होता है। वह अपने हृदयमें ही उपलब्ध होता है।

हमें तीन बातोंकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। पहली बात—आचरण शुद्ध हो। दूसरी बात—नामका कभी विस्मरण नहीं होना चाहिये। तीसरी बात—मेरा रक्षण करनेवाला कोई है, कोई सद्गुरु है, इसका हमेशा स्मरण रहे। प्रत्येक व्यक्तिको किसी-न-किसी बातमें विशेष रुचि होती है। उसकी रुचि अवश्य रखो, फिर भी जबरदस्तीसे क्यों न हो, लेकिन नामस्मरण अवश्य करो। आत्मज्ञानहेतु यदि आप उसका पीछा करेंगे; तो वह शीघ्र नहीं होगा। भगवान्की ओर यदि आपका ध्यान लग जाय तो आत्मज्ञान अपने-आप प्राप्त हो जायगा। नामस्मरण करना ज्ञान प्राप्त होनेका ही लक्षण है। उत्तम वस्तु अल्पमात्रामें ही होती है। श्रीखण्डमें दहीका थक्का (गाढ़ा दही) और शक्कर काफी होती है, लेकिन केशरकी मात्रा अल्प होती है। वही स्थिति नामस्मरणकी भी है। हररोज थोड़ा-थोड़ा; पर निष्ठासे और किसी प्रकार बदलेमें प्राप्तिकी इच्छा न रखते हुए यदि नामस्मरण किया जाय तो बड़ी उपलब्धि होगी।

[संग्राहक—श्री गो० सी० गोखले]

कुछ महत्त्वपूर्ण नामों एवं शब्दोंके रहस्य

(ठा० श्रीनारायणसिंहजी)

ब्रह्म और भगवान्—ब्रह्म और भगवान् एक ही हैं। ज्ञानकी दृष्टिसे वे ब्रह्म [निर्गुण, निराकार] हैं और भक्तिकी दृष्टिसे वे भगवान् [सगुण, साकार] हैं। जैसे भोजनमें स्वाद भी होता है और सुगन्ध भी होती है। तो रसनाकी दृष्टिसे भोजनमें स्वाद होता है और नासिकाकी दृष्टिसे सुगन्ध होती है, पर भोजन तो एक ही है। ऐसे ही श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं और ब्रह्म ही श्रीकृष्ण हैं अर्थात् दोनों बातें एक ही हैं।

सच्चिदानन्द—इसमें सत्, चित् और आनन्द—ये तीन शब्द हैं। सत् माने जो सदासे था, सदा है और सदा ही रहेगा। चित् माने चेतनस्वरूप, ज्ञानस्वरूप [अर्थात् जो सब-कुछ जानता है] और आनन्द माने जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है, अविनाशी सुख है।

सन्त और असन्त—सन्त किसीका अपकार नहीं देखते कि किसने हमारे साथ अपकार [अहित] किया है और असन्त किसीका उपकार नहीं देखते कि किसने हमारे साथ उपकार [हित] किया है। जिसके बिछुड़नेसे दुःख होता है, वह सन्त है और जिसके मिलनेसे दुःख होता है, वह असन्त है।

साधु और असाधु—जो परमात्माकी तरफ जा रहा है, वह साधु है और जो संसारकी तरफ जा रहा है, वह असाधु है।

क्षर और अक्षर—'क्षर' माने नाशवान्, जैसे—संसार, शरीर आदि और 'अक्षर' माने अविनाशी, जैसे—परमात्मा, आत्मा आदि।

योग—(१) संसारसे वियोग-ही-वियोग है, संयोग है ही नहीं। इस प्रकार संसारसे सर्वथा वियोगका अनुभव हो जाना योग है। (२) परमात्माके साथ सम्बन्धका नाम योग है। (३) अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है अथवा असत् पदार्थोंसे सर्वथा वियोग हो जाना योग है।

विस्मृति और स्मृति—संसारसे संयोग मानना ही विस्मृति है और संसारके साथ मेरा संयोग था नहीं, है नहीं, होगा नहीं तथा हो सकता भी नहीं—ऐसा अनुभव होना स्मृति है।

अज्ञान—असत्को असत् समझकर भी उससे विमुख न होना अज्ञान है।

प्रपत्ति—संसारसे दूर होकर भगवान्के चरणोंमें गिर जाना प्रपत्ति है।

श्रेष्ठ दान—संसारमें अनेक दान होते हैं, जैसे—कन्यादान, पृथ्वीदान, गोदान और अन्नदान आदि। लेकिन जो भगवान्की कथाका दान करता है [अर्थात् किसीको अच्छी शिक्षा देकर, ज्ञान देकर सन्मार्गपर लगा देता है], वही सबसे श्रेष्ठ दान है; क्योंकि इससे दान करनेवालेकी सद्गति तो होती ही है, दान ग्रहण करनेवालेकी भी सद्गति हो जाती है। इसीलिये गोपियोंने कहा है कि—**'भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः'** (श्रीमद्भा० १०।३१।९)—जो सच्चे अर्थोंमें भगवान्की लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें पृथ्वीपर वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

कर्तव्य और अकर्तव्य—शास्त्रोंने जिन-जिन वर्ण और आश्रमोंके लिये जो-जो कर्म करने बताये हैं, वे सब उन-उनके लिये कर्तव्य हैं और जिनके लिये निषेध किया है, उनके लिये वे सब अकर्तव्य हैं।

धर्म—(१) शास्त्रोंने जिसे जो करनेकी आज्ञा दी है, वह सब धर्म है। (२) जिस कार्यसे सबके हृदयमें रहनेवाले परमात्माको प्रसन्नता हो, वह धर्म है। (३) धर्म वह है, जो जीवका कल्याण कर दे।

अधर्म—(१) शास्त्रोंने जिसके लिये जो निषेध किया है और जिससे परलोकमें दुर्गति होती है, वह अधर्म है। (२) अधर्म वह है, जो जीवको बन्धनमें डाल दे।

सुमार्ग—जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, वही सुमार्ग है।

कुमार्ग—जिससे संसारमें आसक्ति हो जाय, वही कुमार्ग है।

मौन—अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दुःख आदिको लेकर मनमें हलचलका न होना मौन है। महापुरुषोंकी वाणियों, गीता, रामायण आदिका मनन करना भी मौन है। वाणीका संयम भी मौन है।

लज्जा—(१) शास्त्र एवं लोक-मर्यादाके विरुद्ध

काम करनेमें जो एक संकोच होता है, उसका नाम लज्जा है। (२) पाप करनेसे घृणा होनेका नाम भी लज्जा है।

बन्धन और मोक्ष—उत्पन्न होनेवाले और विनाश होनेवाले पदार्थोंके साथ सम्बन्ध मानना ही बन्धन है तथा रागादि दोषोंसे रहित होकर भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ना मोक्ष है।

स्थूल-शरीर—जो आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ है अर्थात् जो माता-पिताके रज-वीर्यसे पैदा होता है, उसको स्थूल-शरीर कहते हैं।

सूक्ष्म-शरीर—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ [कान, नाक, नेत्र, जिह्वा और त्वचा], पाँच कर्मेन्द्रियाँ [मुख, हस्त, पाद, पायु और उपस्थ], पाँच प्राण [प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान], मन और बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंसे बने हुए को सूक्ष्म-शरीर कहते हैं।

कारण शरीर—अज्ञानको कारण-शरीर कहते हैं। मनुष्यको बुद्धितकका तो ज्ञान होता है, पर बुद्धिसे आगेका ज्ञान नहीं होता, इसलिये इसे अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान सम्पूर्ण शरीरोंका कारण होनेसे कारण-शरीर कहलाता है। इस 'कारण-शरीर' को स्वभाव, आदत और प्रकृति भी कह देते हैं। जाग्रत्-अवस्थामें स्थूल-शरीरकी प्रधानता रहती है और उसमें सूक्ष्म तथा कारण-शरीर भी साथमें रहता है। स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म-शरीरकी प्रधानता रहती है और उसमें कारण-शरीर भी साथमें रहता है। सुषुप्ति-अवस्थामें स्थूल-शरीरका और सूक्ष्म-शरीरका भी ज्ञान नहीं रहता अर्थात् बुद्धि अविद्यामें [अज्ञानमें] लीन हो जाती है। अतः सुषुप्ति-अवस्था कारण-शरीरकी होती है। जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थामें सुख-दुःख—दोनोंका अनुभव होता है, पर सुषुप्ति-अवस्थामें दुःखका अनुभव नहीं होता और सुख रहता है। इसलिये कारण-शरीरको 'आनन्दमयकोश' भी कहते हैं। स्थूल-शरीरसे क्रिया होती है, सूक्ष्म-शरीरसे चिन्तन और कारण-शरीरसे समाधि होती है।

हिंसा—स्वयं हिंसा करना, किसीसे हिंसा करवाना और हिंसाका समर्थन करना—यह सब हिंसा ही है।

अहिंसा—मन, वाणी और शरीरसे कभी किसीको दुःख न देनेका नाम अहिंसा है।

क्रोध—दूसरोंका अनिष्ट करनेके लिये अन्तःकरणमें जो जलनात्मक वृत्ति पैदा होती है, उसे क्रोध कहते हैं।

राग—संसारके पदार्थोंका मनपर जो रंग चढ़ जाता है, उसे राग कहते हैं।

वासना—अन्तःकरणमें जो छिपा हुआ राग रहता है, उसे वासना कहते हैं।

भोग—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध [ये पाँच विषय], मान एवं बड़ाई आदि—इनकेद्वारा सुख लेनेका नाम भोग है।

पिशुनता—किसीके दोषोंको दूसरोंके सामने प्रकट करके उनमें उसके प्रति दुर्भाव पैदा करना पिशुनता है।

कीर्तन—भगवान्‌के नाम, यश आदिका वर्णन करना कीर्तन है।

अनुकीर्तन—सन्त-महात्माओंने जो पहलेसे मन्त्र, भजन आदि रचे हैं, उन्हींका वर्णन करना अनुकीर्तन है।

संकीर्तन—भगवान्‌के नाम, लीला आदिका गायन करना संकीर्तन है।

जो लोग अनादिकालसे जन्म-मृत्युके चक्रमें भटक रहे हैं—उनके लिये भगवान्‌की लीला, गुण और नामके कीर्तनसे बढ़कर और कोई परमकल्याणका साधन नहीं है; क्योंकि इससे संसार-चक्रमें भटकना तो मिट ही जाता है, परमशान्ति भी प्राप्त हो जाती है। (श्रीमद्भा० ११।५।३७)

वैसे तो कलियुग दोषोंका खजाना है, लेकिन इसमें एक बहुत बड़ा गुण भी है। वह गुण यही है कि कलियुगमें केवल भगवान् श्रीकृष्णका संकीर्तन करनेमात्रसे ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है—'**कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥**' (श्रीमद्भा० १२।३।५१)

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन और चरणोंमें किया गया प्रणाम सारे पापों एवं दुःखोंको सदाके लिये नष्ट कर देता है, उन परमतत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

मनोभावोंके परिमार्जनके लिये गीता

(डॉ० श्रीप्रभुनारायणजी मिश्र)

सामान्य मनुष्यमें प्रेम, क्षमा, दया, करुणा तथा सहानुभूति-जैसे सकारात्मक भाव कम आते हैं; ईर्ष्या, लोभ, मोह और क्रोध-जैसे नकारात्मक भाव अधिक आते हैं। विचारोंकी अपनी तरंगें होती हैं। इन तरंगोंके माध्यमसे विचार एक स्थानसे दूसरे स्थानतक और एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तितक पहुँचते रहते हैं। विज्ञान भी अब इस अवधारणाका समर्थन करने लगा है। यदि किसी व्यक्तिके प्रति आप प्रेम और मित्रताका विचार रखेंगे तो वह व्यक्ति धीरे-धीरे आपका मित्र बन जायगा। इसी प्रकार यदि आप किसीके प्रति शत्रुता और ईर्ष्याका भाव रखेंगे तो व्यक्ति कालान्तरमें आपका शत्रु बन जायगा, बाहरी तौरपर आप उस व्यक्तिके साथ कितने भी अच्छे व्यवहारका दिखावा क्यों न कर रहे हों। मनुष्य अपने भावों और विचारोंका विकिरण भी करता रहता है। किसी समुदायमें एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति सबको प्रसन्नचित्त बना देता है तथा दु:खी व्यक्ति अपने दु:खको अन्य लोगोंमें भी सम्प्रेषित कर देता है। किसी संगठनका मुखिया यदि क्रोधी और अशान्त हो तो सम्पूर्ण संगठनको अशान्त बना देता है। एक सुजनशील, शान्त और प्रसन्न मुखिया अपने परिवेशको भी वैसा ही बना देता है। नकारात्मक विचार और भाव चारों ओर नकारात्मक ऊर्जाका ही प्रसार करेंगे, जिससे पूरा वातावरण प्रतिकूलरूपसे प्रभावित होगा। नकारात्मक विचार हमसे मूल्य वसूल करते हैं। मन इनसे अशान्त रहता ही है। मात्र इतना ही नहीं, नकारात्मक विचारोंकी कीमत हमें कई अन्य स्तरोंपर भी चुकानी पड़ती है। नकारात्मक विचार और भाव हमें सामाजिक रूपसे अलोकप्रिय एवं असम्मानित बनाते हैं, इनका हमारे स्वास्थ्यपर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। नकारात्मक विचारोंमें क्रोध, ईर्ष्या, लोभ तथा भय आदि काफी प्रचण्डता रखते हैं। नकारात्मक भावों और विचारोंका परिमार्जन हर समझदार व्यक्तिकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। नकारात्मक मनोवेगोंका नियन्त्रण एक पेचीदा मसला है।

आधुनिक मनोविज्ञान तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें मनोभावोंके परिष्कारके लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। यहाँ आधुनिक मनोविज्ञानमें बतायी गयी विधियोंकी चर्चा न करके गीतामें वर्णित कुछ एक विधियोंका उल्लेख किया जायगा। मनोवैज्ञानिक विधियोंकी चर्चा न करनेके अपने कारण हैं। मनोविज्ञान स्वत: अपरिपक्व अवस्थामें है और इसने अनेक बार अपनी ही मान्यताका खण्डन किया है। यदि मसला अपने जीवनका हो तो हमें अपेक्षाकृत परिपक्व विधियोंका ही प्रयोग करना चाहिये। गीता हजारों वर्षोंसे लोगोंका मार्गदर्शन कर रही है। अत: यह आधुनिक मनोविज्ञानकी तुलनामें अधिक भरोसेमन्द है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक विधियोंमें कुछ अन्य खामियाँ भी हैं। मनोविज्ञानके अनेक निष्कर्ष असामान्य लोगों, पागलों और जानवरोंपर प्रयोग करके निकाले गये हैं। उन निष्कर्षोंको स्वस्थ, सामान्य मनुष्योंपर लागू करना उचित नहीं है। निष्कर्ष निकालनेके लिये जिन शोध-विधियोंका प्रयोग किया गया, वे भी शत-प्रतिशत त्रुटिविहीन नहीं हैं। अत: मनोविज्ञानमें बतायी गयी विधियोंका प्रयोग न करके यहाँ गीताकी बतायी विधियोंका प्रयोग दिया जा रहा है। गीता हजारों वर्षोंसे लोगोंका सफल मार्गदर्शन करती रही है तथा मनोवैज्ञानिक विधियोंपर अभीतक एक राय कायम नहीं हो सकी है।

एक उदाहरण लें, क्रोध एक प्रचण्ड मनोवेग है। हर व्यक्ति कभी न कभी इसका शिकार अवश्य हुआ रहता है। अध्यात्म और मनोविज्ञान, दोनोंने इसके नियन्त्रणके लिये उपाय बताये हैं। मनोवैज्ञानिक उपायोंको हम दो वर्गोंमें रख सकते हैं—१. क्रोधको दबा दीजिये और २. क्रोधको व्यक्त कर दीजिये। चिकित्सकोंका मत है कि क्रोधको दबानेसे अनेक मानसिक-शारीरिक रोग पैदा होते हैं। क्रोधको व्यक्त कर देनेसे कुछ राहत अवश्य प्रतीत होती है, जैसे खौलते हुए पानीभरे डिब्बेका ढक्कन खोलते ही भाप निकल गयी हो। एक बार भाप निकलनेसे यह गारन्टी नहीं होती कि दुबारा भाप बनेगी ही नहीं। बार-बार यदि आप गुस्सेको व्यक्त करेंगे तो यह आपकी आदत बन जायगी। आदत बन जानेके बाद गुस्सेसे मुक्त होना कठिन होगा। अत: गुस्सेको नियन्त्रित करनेके लिये उसे दबाना

या व्यक्त करना—दोनों ही उचित प्रतीत नहीं होता।

क्रोध हमारा एक प्रमुख शत्रु है। गीतामें कई स्थानोंपर क्रोधका उल्लेख हुआ है। गीताके दूसरे अध्यायके बासठवें और तिरसठवें श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण क्रोध उत्पन्न होनेका कारण, उससे होनेवाली हानि और क्रोधको नियन्त्रित करनेके उपायपर प्रकाश डालते हैं। श्लोक इस प्रकार हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अर्थात् विषयोंका निरन्तर ध्यान करते-करते व्यक्तिके मनमें विषयोंके प्रति रस उत्पन्न होता है। इस रसके कारण मनुष्यके मनमें विषयोंके प्रति इच्छा जागती है। इच्छापूर्ति न होनेपर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे अभिभूत होनेपर मूढ़भाव जाग्रत् होता है। मूढ़भावसे स्मृति लुप्त हो जाती है। स्मृतिलोपसे बुद्धिका नाश होता है। बुद्धि नष्ट होनेसे मनुष्य स्वयमेव नष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त श्लोकोंका तात्पर्यार्थ यह है कि यदि आप क्रोधसे मुक्त होना चाहते हैं तो विषयोंके प्रति मनसे रस ही उत्पन्न न होने दें। यदि विषयोंके प्रति कुछ अनुराग उत्पन्न हो ही गया है तो उनकी इच्छा न उत्पन्न होने दें। इच्छापूर्तिमें बाधासे ही क्रोध उत्पन्न होता है। इच्छाओंका गणित विचित्र है। एक इच्छा पूर्ण होते ही अनेक अन्य इच्छाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिसमेंसे अधिकांशका पूर्ण होना सम्भव नहीं होता। अतः क्रोधकी उत्पत्ति होती है। ये हमारी आकांक्षाएँ ही हैं, जो क्रोधके रूपमें परिणत हो जाती हैं। हमने सबसे आकांक्षाएँ पाल रखी हैं—साथियोंसे, परिवारसे, समाजसे तथा सड़कपर चल रहे अपरिचित लोगोंसे भी। ये आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होतीं और हम क्रोधके शिकार हो जाते हैं। सड़कपर चल रहे अपरिचित लोगोंसे भी हमने उम्मीदें पाल रखी हैं। यथा—वे यातायातके नियमोंका पालन करेंगे, सड़कको गन्दा नहीं करेंगे आदि। हमारी आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होतीं और क्रोधग्रस्त होकर हम अपनी मानसिक शक्तियोंकी आहुति दे देते हैं। अतः क्रोधको समाप्त करनेके लिये आकांक्षाओंको समाप्त कीजिये। जब भी आप क्रोधके शिकार हों, अपना खुदका विश्लेषण कीजिये और पता लगाइये कि किस अपूर्ण आकांक्षाके कारण क्रोध आया। इस प्रकार एक-एक करके इच्छाओंको समाप्त करते जाइये। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि इच्छाएँ समाप्त हो गयीं तो हम कार्य क्यों करेंगे? वस्तुतः हमारे कार्य हमारे शुभ संकल्पोंकी शक्तिसे संचालित होने चाहिये, न कि इच्छाओंके अनियन्त्रित प्रवाहसे।

मनोवेगोंके नियन्त्रण और परिमार्जनके लिये गम्भीर प्रयासकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ मनोवेग व्यक्त करनेयोग्य होते हैं और कुछ नहीं। प्रेम, मैत्री, करुणा आदि व्यक्त करनेयोग्य मनोवेग हैं। घृणा, ईर्ष्या, क्रोध ऐसे मनोवेग हैं, जिन्हें व्यक्त करना उचित नहीं। इनको दबाना भी उचित नहीं है। इन्हें तो पूरी तौरपर जड़से उखाड़ना चाहिये। इन्हें समूल समाप्त करनेके तथा मनको नियन्त्रित करनेके अनेक उपाय गीतामें बताये गये हैं। ध्यान करना, आहार सात्त्विक और शुद्ध रखना, मनमें सद्विचारोंको जाग्रत् करना, परमात्माका चिन्तन करना तथा परमात्माके प्रति समर्पण भाव रखना आदि ऐसे उपाय हैं, जो मनोभावोंको नियन्त्रित और शुद्ध रखनेमें सहायक होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें एक-से-एक सरल उपाय बताते चले गये हैं। हमें अपनी रुचि और शक्तिके अनुसार उपायका चुनाव करके सतत उसका अभ्यास करना चाहिये। [प्रे०—श्रीसंपतकुमारजी झँवर]

प्रेरक-प्रसंग—

चोरीसे छुटकारा

एक चोर सन्त नानकके पास पहुँचा और इस बुरी आदतसे छुटकारा पानेका उपाय उसने पूछा। नानकजीने जो उपाय बताये, वे उससे निभते न थे। एकके बाद एक उपाय बदलते-बदलते जब बहुत दिन बीत गये और किसी उपायसे भी वह आदत न छूटी तो उन्होंने चोरको बताया कि तुम अपने पाप सबके सामने प्रकट करने लगो। इससे अब चोरका बार-बार आना और पूछना समाप्त हो गया और उसकी आदत भी सुधर गयी। पाप प्रकट करनेमें उसे लज्जा लगती थी, अतः उसने चोरी करना ही बन्द कर दिया। [श्रीमुकेशमोहनजी तिवारी]

'कृष्णदिवाने रसखानजी'

(श्रीमती भगवतीजी गोयल, साहित्यरत्न)

हमारे बाँकेबिहारी कोई-न-कोई अहैतुकी लीला करते ही रहते हैं। उनकी मायाका कोई पार नहीं पा सकता। न जाने कब किसपर रीझ जायँ! न जाने कब किस जीवपर कृपा हो जाय! बुलानेपर तो वे कभी आते नहीं, चाहे सिर पटक-पटककर मर जाय। न तपसे मिलते हैं, न जपसे, न ध्यानसे। यदि इन्हें इस प्रकार मिलना हो तो योगी, यति, ऋषि ध्यान करते रहते हैं, परंतु ये उनकी ओर देखतेतक नहीं। जब कृपा करते हैं तो अचानक करते हैं।

कृष्णके दीवाने रसखानजी एक मुसलमान थे। एक बारकी घटना है, वे अपने उस्तादके साथ मक्का-मदीना जा रहे थे। उनके उस्तादने कहा—'देखो, रास्तेमें हिन्दुओंका तीर्थ वृन्दावन आयेगा, वहाँ एक काला नाग रहता है। तू आगे-पीछे मत देखना; नहीं तो वह तुझे डँस लेगा, तू मेरे पीछे-पीछे चला आ। अपने दायें-बायें भी मत देखना वरना जब मौका देखेगा, तुझे डँस लेगा।'

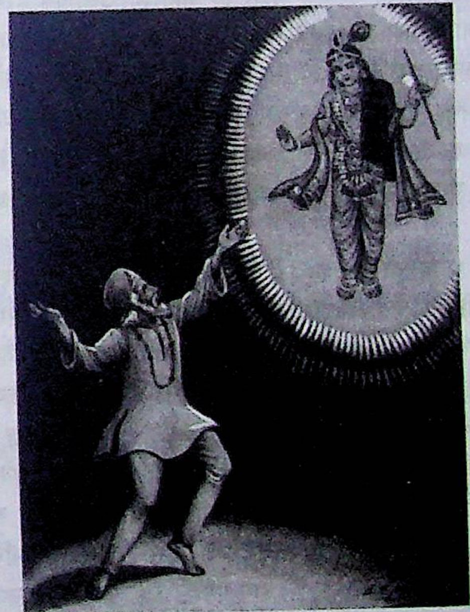
बस, रसखानजीके मनमें एक उत्कण्ठा-सी जाग गयी कि क्या मुझे वहाँ काला नाग दिखायी देगा? वे यही सोचते जा रहे थे, उनकी लौ लग गयी हमारे श्रीबाँके-बिहारीसे, फिर क्या था! जैसे ही आप श्रीवृन्दावन आये, उस्तादने पुनः कहा—'रसखान! अब सावधानीसे चलना, यह हिन्दुओंका तीर्थ है। यहीं वह काला नाग रहता है।'

उस्तादका कहना था कि हमारे लीलाधारीने अपनी लीला आरम्भ कर दी। कभी दायें, कभी बायें मीठी-मीठी बाँसुरीकी धुन बजानी शुरू कर दी। दूसरी ओर नूपुरकी मधुर तान सुनकर बिचारे रसखानजी मुग्ध हो गये। दोनों ओर मधुर तान तथा झंकार सुनकर बौरा-से गये। उनसे दायें-बायें देखे बिना न रहा गया। अन्तमें जब यमुनाके किनारे पहुँचे तो एक ओर देख ही तो लिया। वहाँ श्रीबाँकेबिहारीजीके प्रियाजीके साथ सुन्दर छविके दर्शन किये और मोहित हो गये। देखते ही रह गये। भूल गये अपने उस्तादको और निहारते ही रहे उस प्यारी छविको। अपनी सुध-बुध खो बैठे, अपना ध्यान ही न रहा कि मैं कहाँ हूँ; वहीं ब्रजरजमें लोट-पोट हो गये। उनके मुखसे झाग निकल रहा था, वे तो ढूँढ़ रहे थे उस मनोहर छविको, पर अबतक तो प्रभुजी अन्तर्धान हो चुके थे।

थोड़ी दूर जाकर उस्तादने पीछे मुड़कर देखा, रसखान दिखायी नहीं दिये; वे वापस आये। रसखानकी दशा देखकर समझ गये, इसे वही काला नाग डँस गया है। अब यह हमारे मतलबका नहीं रहा। उस्ताद आगे बढ़ गये।

रसखानजीको जब होश आया, वे वही प्यारी मनमोहक छवि ढूँढ़ रहे थे अपने चारों ओर। सबसे पूछा, वह साँवरा-सलोना, मोहनी मूर्तिवाला अपनी बेगमके साथ कहाँ रहता है? कोई तो बता दो। किसीने बिहारीजीके मन्दिरका पता बता दिया। वे वहाँ गये। किसीने अन्दर जाने नहीं दिया, तीन दिनतक भूखे-प्यासे वहीं पड़े रहे। तीसरे दिन बिहारीजी अपना प्रिय दूध-भात चाँदीके कटोरेमें लेकर आये और अपने हाथसे खिलाया।

प्रातःकाल लोगोंने देखा कटोरा पासमें पड़ा है। रसखानजीके मुखपर दूध-भात लगा हुआ है। कटोरेपर बिहारीजी लिखा है। रसखानजीको उठाया, लोग उनकी चरणरज माथेपर लगाने लगे। वे गली-गली गाते फिरते— ***'बंसी बजाके, सूरत दिखाके क्यों कर लिया***



किनारा…।' आज भी रसखानजीकी मजारपर बहुत लोग जाकर उनके दिव्य कृष्णप्रेमकी याद करते हैं।

'बरषा रितु रघुपति भगति'

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')

तुलसीदासजीने भजन और भक्तिकी महिमा गायी है। भजनमें भी उन्होंने भगवान्के नामकी विशेष उदारता दर्शायी है। गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज, आभीर, यवन, किरात, खस, स्वपच आदि महान् पापियोंका उद्धार करनेवाला भगवन्नाम ही है। नामका आश्रय भक्ति-मार्गका सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है। यह अपने-आपमें बिलकुल पूर्ण और स्वतन्त्र साधन भी है। नाम और नामीमें अभिन्न सम्बन्ध है। भगवान् और उनके नाममें तो नामकी ही अधिक महिमा है। नाम पकड़कर नामीके पास पहुँचना आसान है। भजनके अभावमें वे हमसे दूर प्रतीत होते हैं। भजनमें लगते ही वे हमपर कृपा करने लगते हैं। अनेक जन्मोंके मलिन संस्कारके कारण हम उनका भजन नहीं कर पाते हैं। वे कितने उदार हैं? वे हमेशा हमारा कल्याण चाहते हैं। हमारे कल्याणके लिये वे मानवरूपमें अवतार लेते हैं। लेकिन फिर भी हम उन्हें नहीं पहचानते हैं, यह हमारी मूढ़ता ही है। उन्होंने हमारी मूढ़ता दूर करनेकी भावनासे ही ऐसा कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

(गीता ७। २५)

श्रीमद्भागवत ११। ५। ३६ में नवें योगीश्वर करभाजनजीने कहा है कि इस कलियुगमें केवल नाम-संकीर्तनसे ही मनुष्यके सारे स्वार्थ और परमार्थ सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये इस युगका गुण जाननेवाले सारग्राही श्रेष्ठ मनुष्य कलियुगका गुणगान करते हैं। तुलसीदासजीने भी रामनामके संकीर्तनपर विशेष बल दिया है। रामका गुणगान ही रामनाम-संकीर्तन है। उनकी वाणी देखिये—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(रा०च०मा० ७। १०३ क)

भगवान्ने भी कहा है कि नाम-संकीर्तन करनेवाला भक्त शीघ्र ही गुणातीत अवस्थाको प्राप्त कर लेता है; क्योंकि भगवान्के नाममें भगवान्का दिव्य प्रभाव भरा है। नाम-संकीर्तन भगवान्की शरणागति है। नाम-प्रेम ही सर्वोपरि भक्ति है, जिसमें भक्तको पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। तुलसीदासजीने अलंकारयुक्त भाषामें कहा है कि रामकी भक्ति वर्षाऋतुकी तरह है। रामनामके दोनों अक्षर 'रा' तथा 'म' श्रावण और भाद्रपद-मासकी तरह भक्तोंके हृदयमें आनन्दकी घोर वृष्टि करते हैं। इस प्रकार राम-भक्तिरूपी वर्षाऋतुका जल रामनाम है। रामनामकी साधनासे भक्तका जीवन पवित्र और आनन्दमय बनता है अर्थात् रामनामकी साधना करनेवाले सुदास हैं। जैसे वर्षाऋतुकी घोर वृष्टिसे शालि—धान तैयार होता है और वृष्टिमें जितनी अधिकता होती है, शालि—धानमें उतनी ही श्रेष्ठता बढ़ जाती है, वैसे ही रामनामका जप जितना अधिक भक्त करते हैं, भक्तमें उतना ही अधिक प्रेमका विकास होता है। इस प्रकार जैसे वर्षाऋतुका सम्बन्ध जलसे है, वैसे ही रामभक्तिका सम्बन्ध रामनामसे है। तात्पर्य यह है कि वर्षाऋतुका महत्त्व जलके कारण है। रामभक्तिका विकास भी रामनामके जप, स्मरण और संकीर्तनसे होता है, अतः रामभक्तिकी तुलना वर्षाऋतुसे करना उचित ही है।

रामनाम भवरोगकी असली औषधि है। इसी रामनामकी भक्तिसे अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप भगवत्तत्त्वका बोध हो जाता है, जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार की गयी है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(१। २। ११)

भगवत्-तत्त्व एक ही है, जिसे कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान् कहता है। भगवान् पूर्ण निष्काम हैं, अतः उनकी भक्ति भी निष्काम की जाती है। जीव भगवान्का ही अंश है, अतः उसका सच्चा धर्म भगवान्की भक्ति करना है। हमारे अन्दर और बाहर सर्वत्र उनकी आनन्दमयी लीला चल रही है। भक्तिके द्वारा जीव भी भगवदाकार वृत्तिके द्वारा निरन्तर आनन्दरसमें निमग्न हो जाता है, अतः भगवान्की भक्तिको वर्षाऋतुके समान बताना उचित प्रतीत होता है। सारी सृष्टिमें भक्त भगवान्की ही लीला देखता है। सारा जगत् भगवान्का ही रूप है।

हृदयके भीतर भगवान्का निर्गुण रूप है और बाहर उनका ही सगुण रूप है। सच्चा भक्त भीतर और बाहर सर्वत्र भगवान्के ही दर्शन करता है, यही भगवान्की अनन्य भक्ति है। रामनामके जपद्वारा भगवान् दोनों रूपोंमें प्रकट होकर भक्तका जीवन आनन्दरससे भर देते हैं। रामनामका सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि छिपे हुए ब्रह्मको वह प्रकट कर देता है। सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसमें रामनामका यही अद्भुत प्रभाव दर्शाया गया है। तुलसीदासजीकी वाणी देखिये—

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

(रा०च०मा० १। २३। ६—८)

अतः सर्वत्र ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये हम सबको श्रद्धा तथा विश्वासके साथ रामनामका जप तथा संकीर्तन करना चाहिये। प्रभुदर्शन इसीसे होता है। हमारे जीवनका यही लक्ष्य होना चाहिये कि सर्वत्र प्रभुका दर्शन करें, जिससे हमारा जीवन सच्चिदानन्दघनकी वर्षाऋतु बन जाय।

तनावरहित सुखी जीवनके सूत्र

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

आजके व्यावहारिक जीवनमें अधिकांश लोगोंको जिस बातकी शिकायत रहती है, वह है—तनाव। ऐसा लगता है कि तनावपूर्ण जीवन हमारी जीवन-शैलीका एक आवश्यक अंग-सा बन गया है। कोई कार्य समयपर नहीं करनेपर या उसे ठीक समयपर याद नहीं रखनेपर या जिस कामको आवश्यक रूपसे करना था, उसे भूल जानेपर या किसीके कुछ कहने-सुननेपर एक ऐसी मानसिक स्थिति बनती है कि हमें तनाव-सा लगता है। चाहे कोई छोटी-मोटी बात हो या आर्थिक समस्या हो या फिर पारिवारिक झगड़े हों या सामाजिक जीवनमें कुछ कहा-सुनी हो या हमारे मनके अनुसार किसीने कोई कार्य नहीं किया हो तो हम तुरंत ही तनावपूर्ण स्थितिमें आ जाते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रश्न यह उठता है कि क्या यह सम्भव है कि उस तनावको जो हमारे सुखी जीवनमें बाधक साबित हो रहा है या हो चुका है या फिर होता है, उसे पूर्णरूपसे अपने जीवनसे दूर करें ताकि हम भी तनावरहित सुखी जीवन जी सकें। जी हाँ, यह सम्भव है। प्रस्तुत लेखमें कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये गये हैं, जिनका यदि हम अपने जीवनमें पालन कर सकें तो अवश्य ही हम तनावको दूर करनेमें सक्षम होंगे—

१. तनावरहित जीवन जीनेका अचूक नुस्खा—निष्काम कर्म—हम सभी व्यक्तियोंको कभी न कभी तो ऐसा अनुभव होता ही है कि कोई भी कार्य हम शुरू करें और यदि उसमें आशाके अनुरूप सफलता न मिले तो हमारा मन दुःखी हो जाता है। कई बार किसी कार्यके प्रारम्भ करनेमें ही हमें उस कार्यके सफल होनेके बारेमें शंका बनी रहती है, तो कई बार कार्य करते-करते हमें बीचमें उसके सफल होनेमें बाधाएँ दिखने लगती हैं, तो कई बार कार्य ठीक ढंगसे पूरा नहीं होनेपर या समयपर पूरा नहीं होनेपर हम तनावपूर्ण स्थितिमें आ जाते हैं, यह साधारणतः अधिकांश व्यक्तियोंका अनुभव है। लेकिन ऐसी स्थितिसे बचा जा सकता है और तनावरहित जीवन जिया जा सकता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनके माध्यमसे मनुष्यके लाभार्थ तनावरहित जीवन जीनेका अचूक नुस्खा निम्न श्लोकमें दिया गया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(२।४७)

इस श्लोकका सीधा-सा अर्थ यह है कि तू चिन्ता मत कर, तू अपना कर्म कर और सच्चे मनसे पूर्ण लगनके साथ कर्म करना ही तेरा कर्तव्य है। लेकिन उस कर्मका क्या फल होगा यह तेरे अधिकारमें नहीं है। यह कई बातोंपर निर्भर रहता है, इसलिये इसके बारेमें तू विचार मत कर और फलकी लालसासे तू कोई काम मत कर, बल्कि अपना कर्तव्य समझकर अपना कार्य किये जा। बस, यही नुस्खा है तनावरहित जीवन जीनेका। यह बात कहनेमें तो बड़ी आसान लगती है, पढ़नेमें भी सरल लगती है, लेकिन वास्तविक जीवनमें पालन करनेमें थोड़ी कठिन है, लेकिन असम्भव नहीं। इसके लिये हमें चाहिये कि हम पूर्ण लगन और निष्ठाके साथ जिस कर्ममें संलग्न होना चाहते हैं, उसमें लग जायँ और उस कर्मका क्या नतीजा होगा; यह भगवान्पर छोड़ दें। ऐसा करनेपर हमें कभी भी कोई तनाव नहीं होगा। इस बातको और इस श्लोकको हम प्रतिदिन कम-से-कम एक बार अवश्य दोहरा लें और जब भी कोई कार्य करें, इस अद्भुत श्लोकको यादकर हम तनाव, चिन्ता आदिको अपने जीवनसे बिलकुल बाहर कर सकते हैं।

२. नियमित जीवन-शैली—आपने बहुत-से लोगोंके जीवनको यदि नजदीकसे देखा होगा तो आपने पाया होगा कि वे न तो ठीक समयपर सोकर उठते हैं और न ही ठीक समयपर नाश्ता, दोपहरका भोजन और रातका भोजन करते हैं। यदि किसी जगहपर अमुक समयपर पहुँचना है तो वे देरीसे पहुँचते हैं। यदि हम ऐसी अनियमितता अपने

जीवनमें बरतते हैं, तो हमें अनावश्यक रूपसे तनावग्रस्त होना पड़ता है। इसलिये यदि हमें सुखी जीवन चाहिये जिसमें तनावका कोई स्थान न हो, तो हमें चाहिये कि हमारे सोकर उठनेका समय, नाश्ते, दोपहरका भोजन और रात्रिका भोजन आदिका समय, शयनका समय, प्रात:काल घूमनेका समय, अपने धनोपार्जनका समय, लोगोंसे मिलनेका समय आदि सब एक नियमबद्ध कार्यक्रमके अनुसार तय रहे। हमें चाहिये कि हम प्रतिदिन नियमित रूपसे प्रात:काल ही उठें, शौच आदिसे निवृत्त होकर यथासम्भव खुली हवामें घूमने जायँ और योगासन आदि करें। एक समयके भोजन और दूसरे समयके भोजनमें पर्याप्त अन्तर अवश्य रखें। अपने दैनिक कार्यक्रमोंकी सूची प्राथमिकताके आधारपर रोज बनानी चाहिये और किस कार्यमें कितना समय लगेगा, उसका अनुमानित समय भी हमें रोज लिख लेना चाहिये। सम्भव हो तो दिनमें एक या दो बार उस सूचीको अवश्य देखना चाहिये। ऐसा करनेसे हम अनावश्यक तनावसे बच सकेंगे और नियमित जीवन पालन करनेसे जहाँ एक ओर हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, वहीं दूसरी ओर हम तनावरहित जीवन व्यतीत करनेमें सफल भी हो सकेंगे।

३. विवेकपूर्ण खान-पान—कई बार हमें इस बातसे तनाव हो जाता है कि हमने खानेमें कुछ ऐसा खा लिया कि पेटदर्द होने लगा या सिरदर्द होने लगा अथवा पतले दस्त होने लगे या कब्ज हो गयी। इन शारीरिक व्यवधानोंके कारण कई बार तनाव हो जाता है। इससे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम खान-पानमें विवेकसे काम लें। सर्वप्रथम तो पूर्णरूपसे शाकाहारी रहना चाहिये। हमें शरीरके लिये जो आवश्यक तत्त्व चाहिये, जैसे—कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज आदि—ये सब पदार्थ सन्तुलित शाकाहारमें उपलब्ध होते हैं। फल और सब्जियोंका स्थान हमारे खान-पानमें अधिक होना चाहिये। यदि हम फल और अन्नको साथ-साथ खायेंगे तो उसमें गैस बननेकी ज्यादा आशंका रहेगी और अनावश्यक तनावसे हम ग्रस्त हो जायेंगे। इसी प्रकार दिनभरमें लगभग २.५ लीटर पानी हमें अवश्य पीना चाहिये। लेकिन भोजनके आधे घण्टे पूर्व और एक घण्टे बाद ही पानी पीना चाहिये। जहाँतक सम्भव हो भोजनके साथ हम पानी नहीं पीयें ताकि इससे पाचन-क्रियामें कोई परेशानी न हो। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि हम चाय, काफी आदि न लें; धूम्रपान और मद्यपान या किसी भी प्रकारके नशेकी आदत अधिकांश व्यक्तियोंको इसलिये हो जाती है कि वे तनावसे बचना चाहते हैं। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिये कि धूम्रपान और शराब आदि तनाव घटाते नहीं; बल्कि तनाव बढ़ाते ही हैं।

४. आध्यात्मिक दृष्टिकोण—भारतीय संस्कृतिने हमें बार-बार यही शिक्षा दी है कि हम शरीर नहीं, बल्कि आत्मा हैं और आत्माकी ओर ध्यान करें और उसकी उन्नतिके लिये ही हर कार्य करें तथा यह ध्यान रखें कि देवत्वका अंश हमारी आत्मा है और वही आत्मा प्रत्येक प्राणीमें है। इसलिये दूसरे व्यक्तिको अपने उसी देवत्वका अंश मानकर हम व्यवहार करेंगे तो फिर न किसीसे कहनेकी बात होगी और न किसीसे द्वेष होगा। महर्षि पतंजलिके अनुसार हमें दूसरोंकी उन्नतिमें प्रसन्नता होनी चाहिये न कि ईर्ष्या। ईर्ष्याकी भावना रखनेसे अकारण ही हमें तनाव होगा। इसलिये दूसरोंकी खुशी देखकर हमें प्रसन्न होना चाहिये। बराबरके लोगोंसे मैत्रीभाव रखना चाहिये और अपनेसे हल्की स्थितिवाले व्यक्तियोंके प्रति करुणाका भाव रखना चाहिये। लेकिन यदि कोई व्यक्ति दुष्टता करता हो और यह मालूम हो कि उसका व्यवहार और उसका विचार अच्छा नहीं है तो बजाय उससे घृणा करने या उससे द्वेष करनेके हमें उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। यदि इस प्रकारके मुदिता, मैत्री, करुणा और उपेक्षाके मार्गका ध्यान रखेंगे, तो फिर यह उचित आध्यात्मिक दृष्टिकोण होगा, जिसमें तनावका कोई स्थान ही नहीं होगा। हमारा संकल्प तो होना चाहिये 'सभीका भला सोचें तथा भला करें'। बस, इसी बातको यदि दिनमें दो-चार बार दोहरा लें और इसका पालन करें, तो फिर आप स्वयं देखेंगे कि आपके जीवनमें कोई तनावका स्थान ही नहीं नजर आयेगा और आप तनावरहित सुखी जीवन जी सकेंगे।

विश्वकवि तुलसीका व्यक्तित्व-वैभव

(डॉ० श्रीहरिकिशोरप्रसादसिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

कवि-कुल-कुमुद-कलाधर गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दी-साहित्यके ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व-साहित्यके श्रेष्ठतम कवि हैं। श्रीरामचरितमानसमें उनकी विशाल महाकाव्यात्मक दृष्टिका आभास सहज ही मिल जाता है। जीवनके व्यावहारिक पक्षों एवं मार्मिक स्थलोंकी पहचान उनकी व्यापक दृष्टिकी पहचान है। उनके ही स्पर्शसे रामकाव्य अपने चरम उत्कर्षपर प्रतिष्ठित है। उन्होंने अपने उपास्यकी शील-साधना और भक्तिमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध दिखलाकर लोक-जीवनके सम्मुख प्रेमका अत्यन्त उदात्त एवं संयमित रूप रखा। ब्राउनिंगने कहा था—श्रीरामचरितमानसमें सांस्कृतिक पुनर्जागरणका स्वर सबसे अधिक पुष्ट है, दर्शन और अध्यात्मके पवित्र आलोकमें भक्तिकालका साहित्य महान् कलाधर तुलसीका स्पर्श पाकर कुन्दनकी तरह चमक उठा है। लोक-जीवनके सांस्कृतिक जागरण, हृदयके परिष्कार एवं वैयक्तिक कुण्ठाके परिशमनद्वारा साहित्यको सामाजिकताकी पृष्ठभूमिपर लानेका जो कार्य हुआ है, उसका श्रेय तुलसीको सबसे अधिक जाता है।

जहाँ सूरने सौन्दर्य, कोमलता एवं माधुर्यको, जायसीने प्रेम और रहस्यको, कबीरने प्रेम, रहस्य और ज्ञानको, मीराने मृदु-माधुर्य भावकी भक्तिपूर्ण तन्मयताको, विद्यापतिने शृंगार भावको अपने साहित्यमें स्थान दिया; वहीं तुलसीने एक ही साथ मानसमें शील, सौन्दर्य, प्रेम और ज्ञानका समन्वय उपस्थित कर दिया।

श्रीतुलसी जीवनकी समग्रताके गायक थे। इनका सम्पूर्ण जीवन, इनका सम्पूर्ण साहित्य एवं इनकी साहित्यिक प्रचेष्टा समन्वयकी विराट् प्रक्रियाका प्रतीक है और परम्पराके विटपपर संस्कृतिके सौरभसे प्लावित कवि किसी-न-किसी रूपमें समन्वयके प्रगतिशील मन्त्रका सिद्ध महर्षि है। इनके काव्यकी कनकाभ भूमिमें सामाजिक साधना है। समन्वयकी विराट् चेष्टा और उसका बृहत्तम एवं महत्तम उद्देश्य है—लोक-कल्याणका स्वर्णिम आलोक।

पाश्चात्य रचनाकारों जैसे—टॉलस्टाय, गोर्की, विक्टर, ह्यूगो, कार्लमार्क्स, हक्सले इत्यादिकी रचनाएँ जहाँ आधिभौतिक प्रयासोंकी इति हैं; वहीं बर्ट्रेण्ड रसेल, लॉक, रूसो, वर्जीन बैले, दान्ते इत्यादिके दार्शनिक सिद्धान्त अपनी लघु तरणिरूपी लेखनक्षमताके साथ ज्ञानके महासागरमें तिरोहित हो गये, किंतु महाकवि तुलसीने '**स्वान्तःसुखाय**' की परिधिमें '**सर्वान्तः-सुखाय**' के मंगल विश्वासको समेटते हुए अहम्से वयम्का, आत्मपक्षके साथ लोकपक्षका, भक्ति-कर्म और ज्ञानका, सिद्धान्तके साथ व्यवहारका, निर्गुण और सगुणका, भाषा और संस्कृतिका, कथा और तत्त्वज्ञानका तथा सौन्दर्य और शीलका समन्वय किया। इसी विशिष्ट गुणसे वे जन-जनके लोकनायक बन सके। श्रीतुलसी विश्व-कल्याणकी पवित्र भावना और वैयक्तिक आस्थाके बलपर ही अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक प्रचेष्टाओंद्वारा समन्वयकी इस विराट् भाव-भूमिपर खड़े हो सके हैं।

यदि 'कबीर' का काव्य लोक-समुदायकी बुद्धिको झकझोर सका, 'जायसी' के काव्यमें लोकहृदयको छूनेकी क्षमता आ सकी तो महाकवि तुलसी आदर्श, कर्तव्य, नीति और मर्यादाके पवित्र विश्वासोंका मन्त्र मुखरित करते रहे। यदि 'सूर' ने संवेदनात्मक सहृदयता और संगीतकी मुरलीसे निराशाच्छादित कुहरेको स्वरमय किया, 'मीरा' आत्मतल्लीनता, संगीत, प्रेमोन्मादकी मधुर रागिनी ले गिरिधर गोपालको रिझानेहेतु पगमें घुँघरू बाँध नाचती रही, रसखान अपनी अभिलाषाका मृदु-मधुर शब्दावलीमें शंख फूँकते रहे तो लोकनायक तुलसी प्रचण्ड सूर्यकी रश्मियोंकी तरह कर्म और साधनाका आलोक विकीर्ण करते रहे।

भाषाकी दृष्टिसे भी तुलसीका गुणानुवाद करना उचित ही है। सूरदासने अपनी मृदु सुहृदयता और सांवेदनिक संगीतकी अभिव्यक्तिके लिये व्रजभाषाको अपनाया। संगीत, सौन्दर्य और प्रेमकी वन्दनाके लिये व्रजभाषाके हृदयदेशमें उतर गये। कबीरने परुष व्यंग्य और दार्शनिक अभिव्यक्तिके लिये संतोंकी सधुक्कड़ी भाषाको अपनाया, तो तुलसीने समन्वयकी भाषा अपनायी। अवधीमें एक ओर संयमित शील और सौन्दर्यकी झाँकी है, मृदुता और कोमलतम भावोंकी स्निग्ध ज्योत्स्ना है, तो दूसरी ओर युगपुरुषकी कठोर एवं सशक्त अभिव्यक्तिकी मर्यादा और आदर्शका सक्रिय संदेश भी।

विद्वानोंने भाषाको भावोंकी अनुगामिनी बतलाया है। कवि जॉन मिल्टनने कहा है कि "Poetry should be simple sensous and passionate" तो तुलसीके काव्यकी भाषामें तत्सम शब्दोंकी बहुलता होनेपर भी सरलताके कलेवरमें इतनी मसृणता सम्पुटित है कि वह सम्पूर्ण भारतके जन-जनका कण्ठहार है। किन्हीं भी लघु-गुरु, जटिल-साधारण परिस्थितियोंकी पगडण्डीमें हम जन-जनसे मानसके दोहोंको कहावतके रूपमें

प्रयुक्त होते देखते हैं। भावके अनुरूप ही भाषाका सौन्दर्य *'लालन जोगु लखन लघु लोने'* में स्पष्ट ही द्रष्टव्य है।

शृंगारिक भावनाओंकी अभिव्यंजनामें भी तुलसीका काव्य मर्यादित शृंगारी भावनाओंकी कुशल प्रस्तुति है। मर्यादित, संयमित शीलकी साधना-रेखाओंसे चित्रित मूर्तिमान् भावोंकी अभिव्यक्ति केवल तुलसी ही कर पाते हैं। ऐसा केवल संयोग भावमें ही नहीं, वियोग भावमें भी है।

वनमार्गमें ग्राम्य वधूटियाँ श्रीरामकी ओर लक्ष्यकर विदेहनन्दिनीसे पूछती हैं कि ये तुम्हारे कौन हैं? तो सीताकी भाषामें शालीनताकी पराकाष्ठा है—

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥

(रा०च०मा० २।११७।३)

'बिलोकति धरनी' कितनी स्वाभाविक मुद्रा है, *'दुहुँ सकोच'* के द्वारा कविने सीताके हृदयकी कोमलता और अभिमानशून्यताको व्यंजित किया है। पुनश्च सीताजीमें शृंगारी चेष्टाओंका विधान भी अति रमणीय है—

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥

(रा०च०मा० २।११७।६-७)

विप्रलम्भ शृंगारमें श्रीरामका सीताके वियोगमें वन-वन सीते-सीतेकी रटके साथ भटकना और वन-विटपोंसे जिज्ञासा-भावका प्राकट्य बड़ा ही मार्मिक है। प्रेमकी यह उदात्तता अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है।

वात्सल्य-भावके सम्राट् सूरदास वात्सल्यको व्यापकतासे चित्रित करते हैं, तथापि तुलसीका—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

(रा०च०मा० १।२०३।६-७)

—बाल-मनोविज्ञानका यह दृष्टान्त अत्यन्त आह्लादक तथा उत्कृष्ट है। वस्तुतः मानसमें सभी रसोंका समन्वय है। करुण, वीर, बीभत्स, शान्त, शृंगार इत्यादि सभी इसमें गुम्फित हैं। यहाँ सीता जगज्जननी हैं। इनमें शीलकी साधना है, महत्त्वका प्रतिपादन है, सौन्दर्यका प्रबुद्ध राग है, मर्यादाका मणिमय स्पर्श है, कोमलताकी स्निग्ध वन्दना है और भक्तिकी पल्लवित उपासना है। वे पवित्रताकी राशि हैं, उनमें मृदु भावोंका पुनीत गुम्फन है, शुचिताका आगार प्रतिष्ठित है, दया; क्षमता और उदारताका मणिमय संयोग है और साधना तथा दास्यभावकी सविनय प्रतिष्ठा है।

भक्तगाथा—

मधुर-विनोद

एक मुसलमान भक्त थे। उनका नाम अहमदशाह था। उन्हें प्रायः भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते रहते थे। अहमदशाहसे वे विनोद भी किया करते थे। एक दिन अहमदशाह एक बड़ी लम्बी टोपी पहनकर बैठे हुए थे। भगवान्‌को हँसी सूझी। वे उनके पास प्रकट होकर बोले—'अहमद! मेरे हाथ अपनी टोपी बेचोगे क्या?' अहमद श्रीकृष्णकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये, पर उन्हें भी विनोद सूझा। वे बोले—'चलो हटो, दाम देनेके लिये तो कुछ है नहीं और आये हैं टोपी खरीदने!'

भगवान्—'नहीं जी! मेरे पास बहुत कुछ है!'

अहमद—'बहुत कुछ क्या है, लोक-परलोकको समस्त सम्पत्ति ही तो तुम्हारे पास है, पर वह लेकर मैं क्या करूँगा?

भगवान्—'देखो अहमद! यदि तुम इस प्रकार मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं संसारमें तुम्हारा मूल्य घटा दूँगा। इसीलिये तो तुम्हें लोग पूछते हैं, तुम्हारा आदर करते हैं कि तुम भक्त हो और मैं भक्तके हृदयमें निवास करता हूँ। किंतु अब मैं कह दूँगा कि अहमद मेरी हँसी उड़ाता है, उसका आदर तुमलोग मत करना। फिर संसारका कोई व्यक्ति तुम्हें नहीं पूछेगा।' अब तो अहमद भी बड़े तपाकसे बोले—'अजी! मुझे क्या डर दिखाते हो! तुम यदि मेरा मूल्य घटा दोगे तो तुम्हारा मूल्य भी मैं घटा दूँगा। मैं सबसे कह दूँगा कि भगवान् बहुत सस्ते मिल सकते हैं, वे सर्वत्र रहते हैं, सबके हृदयमें निवास करते हैं। जो कोई उन्हें अपने हृदयमें झाँककर देखना चाहेगा, उसे वे वहीं मिल सकते हैं, कहीं जानेकी जरूरत नहीं। फिर तुम्हारा आदर भी घट जायगा।'

भगवान् हँसे और बोले—'अच्छा भैया! न तुम चलाओ मेरी, न मैं चलाऊँ तेरी!'

ये अहमद निरन्तर भगवान्‌के ध्यानमें ही तल्लीन रहा करते थे। 'राधा'

नशा—एक सामाजिक अभिशाप

(श्रीबहादुरसिंहजी गुर्जर)

मद्यपान पाप और अनाचारका जनक है, दुनियामें जितने भी जघन्य कृत्य होते हैं, उनमें कहीं-न-कहीं मद्यपानकी सहभागिता अवश्य होती है। यह मानवको मानवतासे नीचे गिराकर हैवान बना देता है। शराब पीनेवाला प्रायः मांसाहारी भी होता है, जिससे उसमें तामसिक वृत्तियाँ भी अधिक होती हैं, ऐसेमें उससे नैतिकताकी आशा करना आकाशकुसुम-सदृश ही है। कहा गया है—

मद्यपस्य कुतः सत्यं दया मांसाशिनः कुतः।
कामिनश्च कुतो विद्या निर्धनस्य कुतः सुखम्॥

मद्यपायीको सत्यसे क्या प्रयोजन, मांसाहारीको दया कहाँ, कामीको विद्या कहाँ और निर्धनको सुख कहाँ।

पौराणिक उदाहरण है कि जो यदुवंशी महाभारत-जैसे भीषण संग्राममें भी जीवित बच गये थे, वे मैरेय नामक मदिराके पानके कारण आपसमें ही लड़कर मर गये—

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम्।
कृष्णमायाविमूढानां सङ्घर्षः सुमहानभूत्॥

(श्रीमद्भा० ११।३०।१३)

भारतवर्षमें लगभग ३५ करोड़ व्यक्ति विभिन्न प्रकारके नशीले पदार्थोंकी गिरफ्तमें हैं तथा ५५०० बच्चे प्रतिदिन नशा करना सीख जाते हैं। भारतवर्षमें प्रतिवर्ष लगभग १००० करोड़ रुपये नशीले पदार्थोंपर खर्च किये जाते हैं। नशीले पदार्थोंमें शराब तो परिवारोंको तोड़ने एवं समाजको नष्ट-भ्रष्ट करनेमें प्रथम स्थानपर है ही, इसके अलावा गुटखेने लगभग २० वर्षमें ही अपनी सर्वव्यापकता सिद्ध कर दी है।

एक तरफ सरकारका मानना है कि शराब एवं अन्य नशीले पदार्थोंसे राजस्वमें वृद्धि होती है, परंतु शराबसे जहाँ प्रतिवर्ष ६० हजार करोड़की आय होती है, वहीं १५० हजार करोड़ रुपये शराबजनित रोगोंपर खर्च करने पड़ते हैं। करोड़ों बच्चे अनाथ होते हैं। करोड़ों दम्पती तलाकको मजूबर होते हैं। कितनी ही दुर्घटनाएँ प्रतिदिन शराब-सेवनसे हो रही हैं। शराब पीनेवालेकी शारीरिक एवं मानसिक दशाका वर्णन करते हुए एक संस्कृत सूक्तिमें कहा गया है—

वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनम्।
संनिपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत्॥

अर्थात् शराब पीनेवालेमें विकलता, पृथ्वीपर गिर पड़ना, अनुचित प्रलाप आदि संनिपातके सभी लक्षण दिखायी देते हैं।

जानकार सूत्रोंके मुताबिक जयपुर शहरके ९० प्रतिशत लोग अपनी आयका २० प्रतिशत गुटखेपर खर्च करते हैं। एक तरफ जहाँ राजस्थान-सरकारको २५ करोड़ रुपयेमात्रकी वार्षिक आय गुटखेसे होती है, उधर लगभग १००० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष भूले-भटके भाई गुटखेपर खर्च कर देते हैं। भारत-सरकारको तम्बाकू-उत्पादोंसे ६०० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष आय होती है तथा भारत-सरकारको प्रतिवर्ष २४०० करोड़ रुपये तम्बाकूजनित रोगोंपर खर्च करने पड़ते हैं। ८० प्रतिशत कानून बनानेवाले, ९० प्रतिशत कानूनके रखवाले, ९० प्रतिशत चालक-परिचालक, ६७ प्रतिशत अधिकारी वर्ग तथा ४० प्रतिशत अध्यापक विभिन्न प्रकारके नशीले पदार्थोंके आदी हैं। अब आप विचार कीजिये कि धूम्रपान अधिनियम कैसे कारगर हो सकता है? किसी भी कानूनके सफल क्रियान्वयनके लिये जनजागृति आवश्यक है। चायका सेवन हर प्रकारसे नुकसानदायक है, अब केवल एक ही रास्ता रह जाता है कि व्यक्ति-निर्माणसे परिवार-निर्माण तथा परिवार-निर्माणसे समाज-निर्माण किया जाय। इसे हम यों भी कह सकते हैं 'अपना सुधार ही संसारकी सबसे बड़ी सेवा है।'

एक लोकसेवी अपने पूरे जीवनमें १००० व्यक्तियों, जो मद्यसेवनके विशेष अभ्यस्त हो चुके हैं, का सम्भवतः मद्य-सेवन न छुड़ा पाये, किंतु वह चाहे तो १००० छोटे बच्चोंके मनमें नशेके खिलाफ घृणाके बीज एक ही दिनमें बो सकता है। अतः छोटे-छोटे बच्चोंके बीच प्रार्थना-स्थलपर विद्यालयोंमें जाकर कहानी, दृष्टान्त एवं पोस्टर-प्रदर्शनीके माध्यमसे नशेके खिलाफ कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिये। हम बीमार होकर दवा लें, इससे अच्छा है कि हम बीमार पड़नेसे पहले परहेज कर लें, जिससे बीमार ही न पड़ें। यदि कहीं रेल, बस एवं सार्वजनिक स्थानपर नशा करनेवालोंसे थोड़ा कड़े शब्दोंमें धूम्रपान आदिका विरोध करना हो तो अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि भारतवर्षमें २०० व्यक्ति धूम्रपान करनेवालोंके पास बैठनेसे प्रतिदिन मरते हैं। धूम्रपान करनेवाले ८५ प्रतिशत धुआँ दूसरोंको पीनेके लिये फेंकते रहते हैं।

यहाँ कुछ विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो मद्यसेवनको रोकनेमें सफल हो सकते हैं, इनका प्रचार-प्रसार करना चाहिये—

(१) जो किशोरावस्थामें दुर्गुणोंसे बचा रहता है, वही महान् होता है, बुढ़ापेमें तो भेड़िया भी सन्त-जैसा बन जाता है।

(२) जो दुर्व्यसनोंका शौक पालते हैं, उन्हें बादमें शौक मनाना पड़ता है।

(३) कौआ और कुत्ता सर्वाहारी हैं, लेकिन नशीले पदार्थोंका सेवन वे भी नहीं करते।

(४) नशा करनेवालोंका नशा छुड़ाना कठिन है, असम्भव नहीं, किंतु जिन्होंने अभी नशा करना ही नहीं सीखा है, उनके मनमें नशेके खिलाफ घृणाके बीज बोना आसान कार्य है।

(५) संसारकी सारी सेनाएँ मिलकर इतने मानवों और इतनी सम्पत्तिको नष्ट नहीं करतीं, जितनी शराब पीनेकी आदत।

(६) नशीले पदार्थोंके सेवनसे जितना नुकसान होता है, उसकी उतनी जानकारी लोगोंको नहीं होती, यदि उसके नुकसानकी सही जानकारी हो जाय तो सेवन करना तो दूर, उसे स्पर्श भी नहीं करेंगे।

(७) असली दोस्त गणितज्ञ होना चाहिये, जो खुशियोंमें गुणा कर दे, दु:खोंमें भाग दे, भूलोंको घटा दे और सुनहरे सपनों अर्थात् सद्गुणोंको जोड़ दे। शराब पीनेमें साथ देनेवाले मित्र तो वस्तुत: शत्रुका व्यवहार कर रहे हैं।

(८) आदमीके बनाये मन्दिरमें सुगन्धित अगरबत्तीका धुआँ फैलाया जाता है तथा भगवान्के बनाये मन्दिर (मानव-शरीर)-में नशीले पदार्थोंका धुआँ उड़ाया जाता है।

(९) अगर अध्यापक (बुद्धिजीवी, लोकसेवी) नशीले पदार्थोंका सेवन करता है तो इस अकेले दुर्गुणसे उसके सैकड़ों सद्गुणोंपर पानी फिर जाता है।

(१०) नशा नहीं करनेवालोंमेंसे ५ प्रतिशत भी यदि संगठित हो जायँ तो समाजसे दुर्व्यसन द्रुतगतिसे मिटाये जा सकते हैं।

(११) भगवान् ऐसे लोगोंपर नाराज होते हैं—

१. नशा करनेवाले, २. नशा करानेवाले, ३. नशीले पदार्थोंको बेचनेवाले तथा ४. नशेबाजोंको समझानेका प्रयास नहीं करनेवाले।

(१२) चाय और शराबमें सस्ती-मँहगीका ही अन्तर है।

(१३) व्यसन पहले नौकर बनकर आते हैं, कुछ दिन बाद मित्र बन जाते हैं, बादमें मालिक बनकर हुक्म चलाते हैं।

(१४) पहले नशीले पदार्थोंका सेवन हम करते हैं, बादमें नशीले पदार्थ हमारा सेवन करते हैं।

(१५) सन्त (महात्मा)-की पहली पहचान है कि वह किसी भी प्रकारके नशीले पदार्थका सेवन नहीं करता।

(१६) सबसे पहले सभी प्रकारके नशीले पदार्थ मुफ्तमें ही खिलाये-पिलाये जाते हैं। अत: मुफ्तके मालसे सावधान रहना चाहिये।

(१७) छूतके रोगीकी तरह धूम्रपान करनेवालेसे दूर रहना चाहिये।

(१८) आत्महत्या करनेका प्रयास (नशीले पदार्थोंका सेवन करना भी) धारा ३०९ के तहत अपराध है।

(१९) शादी-कार्डोंपर भी 'नशीले पदार्थोंका सेवन करने-वालोंको निमन्त्रण नहीं' अथवा कार्यक्रम-स्थलपर 'नशा कराने और करने देनेकी स्वीकृति नहीं है'—ऐसा नोट लगाना चाहिये।

नशा छोड़नेके लिये कुछ उपाय एवं सुझाव पेश हैं—

(१) दृढ़ संकल्पके आधारपर बिना किसी औषधिके भी किसी भी प्रकारका नशा छोड़ा जा सकता है, किंतु ऐसे लोग कम पाये जाते हैं जो ऐसे संकल्पके धनी हों।

(२) नशा छोड़नेवालोंको नियमसे कुछ समय भगवन्नामका जप अथवा अपने इष्ट-मन्त्रका जप करना चाहिये, इससे आत्मबल प्राप्त होगा।

(३) व्यसन छोड़नेवालोंको सत्साहित्य पढ़ना चाहिये; क्योंकि खाली दिमाग शैतानका घर होता है।

(४) नशा छोड़नेके बाद दस-बीस दिनतक दो-चार नीमके पत्तोंको चबाना चाहिये।

(५) जर्दा, गुटखा, धूम्रपान छोड़नेहेतु १०० ग्राम सौंफ, १०० ग्राम अजवायन साफ करके मन्द-मन्द आँचपर थोड़ा कड़ाहीमें सेंककर उतार लें। उसमें २० ग्राम काला नमक तथा दो नींबूका रस डालकर एक घण्टे धूपमें सुखा लें। तलब आनेपर थोड़ा-थोड़ा खायें।

(६) भोजनके बाद दोपहरमें दो गिलास छाछ पियें, यदि गायकी छाछ हो तो सर्वोत्तम है। इससे शराब पीना भी छूट जाता है।

(७) सुबह खाली पेट २० ग्राम बछिया (बिना ब्याई गाय)-का मूत्र पीना चाहिये, इससे सभी प्रकारके नशे छोड़े जा सकते हैं।

(८) धूम्रपानकी तलब आनेपर दो बूँद लौंगका तेल जीभ पर टपकाना चाहिये।

(९) पंचायतोंके माध्यमसे शराब एवं अन्य नशीली वस्तुओंके सेवनपर जुर्माना तय करके रोक लगानेका प्रयास करना चाहिये।

(१०) घरवालोंको सामूहिक रूपसे व्यक्ति-विशेषके नशेको छुड़वाने हेतु भगवन्नाम अथवा इष्टदेवके मन्त्रका जप करना चाहिये। भगवत्कृपासे शीघ्र ही सद्बुद्धि प्राप्त हो जाती है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवत्प्रेमकी प्राप्ति

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। श्रीभगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति बहुत ही दुर्लभ होनेपर भी भगवत्कृपा उसीको हो सकती है और सहज ही हो सकती है, जो प्रेमकी कीमतमें सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार है। भगवत्प्रेम किसी कीमतसे नहीं मिलता; क्योंकि वह अमूल्य है।

'कैवल्य' की कीमत भी उसे खरीदनेके लिये पर्याप्त नहीं है; यों कहना चाहिये कि भगवत्प्रेम खरीदा ही नहीं जा सकता। वह उसीको मिलता है, जिसको कृपा करके भगवान् देते हैं और देते उसको हैं, जो सर्वस्व उनके चरणोंपर न्योछावर करके भी अपनेको प्रेमका अपात्र मानता है और पल-पलमें प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमपर मुग्ध होता रहता है। किसी भी उपायसे प्रेम नहीं मिलता और न उसके लिये समयकी ही शर्त है। प्रेमके मार्गमें किसी भी शर्तके लिये गुंजाइश नहीं है। यहाँ तो बिना शर्तका समर्पण है। सब कुछ दे डाले, तन-मन अर्पण कर दे। मुरलीकी भाँति हृदयको शून्य कर दे और बदलेमें कुछ भी न चाहे। चाहे तो यही चाहे कि इस शून्य हृदयका भी उस प्रेमास्पदको पता न लग जाय; क्योंकि शून्य होनेपर भी यह प्रेमके योग्य नहीं है। उसका पवित्र प्रेम यहाँ आयेगा, इस हृदयमें उसका प्रवेश होगा तो उस प्रेमकी प्रतिष्ठा ही घट जायगी। प्रेमके लिये सर्वथा अयोग्य मुझको प्रेम न देनेमें प्रभुके प्रेमकी शोभा है, परंतु वह परम प्रेमास्पद इतनेपर भी न जाने क्यों मुझमें प्रेम करता है, क्या वह स्वयं अपनी प्रेमप्रतिष्ठामें भूल गया है, जो मुझ-सरीखे त्यागकी स्मृति रखनेवाले त्यागाभिमानियोंकी ओर निरन्तर प्रेमदृष्टिसे देखता है और मुझमें भी प्रेमका अस्तित्व मानता है। स्वाभाविक ही सर्वार्पणके पश्चात् जब इस प्रकारका भाव होता है, तब भगवान्‌के प्रेमका पवित्र प्रादुर्भाव हृदयमें होता है। प्रेम तो प्रत्येक जीवके साथ भगवान्‌का दिया हुआ है ही, वह विषयानुरागके दृढ़ और मोटे आच्छादनसे ढका है; विषयासक्ति, ममता और अहंकारके काले परदेसे आवृत है। इस आच्छादन और आवरणके हटते ही वह निर्मल और पवित्ररूपमें प्रकट हो जाता है। यह प्राकट्य ही प्रादुर्भाव है। अतएव जबतक विषयासक्ति, ममता और अहंकार दूर न हो, तबतक भगवान्‌के गुण, माहात्म्य, सौन्दर्य-माधुरी, कारुण्य आदिके श्रवण-मननसे विषयासक्तिको, परम आत्मीयभावके निरन्तर अनुचिन्तन और निश्चयसे विषय-ममत्वको और शरणागतिके भावसे अहंकारको हटाते और मिटाते रहना चाहिये। साथ ही भगवच्चिन्तनका सतत अभ्यास करना चाहिये। प्रेम कितने दिनमें मिल सकेगा, इस बातकी चिन्ता छोड़कर उनका निरन्तर चिन्तन कैसे होता रहे, इसीकी चिन्ता करनी चाहिये। नामजप, गुणानुवाद, श्रवण-मनन, स्वरूपका ध्यान—ये सभी इसमें सहायक हैं। परंतु निर्भरताका भाव बहुत अधिक सहायक होता है। निर्भरताका अर्थ प्रेम-प्राप्तिकी उत्कण्ठाका ह्रास नहीं है। उत्कण्ठा बढ़ती रहे, भगवान्‌के प्रेमके लिये प्राण तड़पते रहें, हृदयमें विरहाग्निकी ज्वाला धधक उठे। परंतु साधन एकमात्र निर्भरता हो। अपने पुरुषार्थका बल कुछ भी न रहे। प्राणोंकी आकुल तड़प, हृदयकी प्रदीप्त अग्नि ही निरन्तर तड़पाती और जलाती रहे और वह तड़पन और ताप ही जीवनका आधार भी रहे। रक्त-मांसको खा डालनेवाली यह आग ही प्राणोंकी रक्षा करती रहे। बड़े सौभाग्यसे इस आगमें जलते हुए, इसी आगको प्राणाधार बनानेका सुअवसर प्राप्त हुआ करता है। उस समय यही चाह हुआ करती है कि प्राणाधार! यह आग कभी न बुझे और उत्तरोत्तर बढ़ती रहकर—मुझे जला-जलाकर सुख पहुँचाती रहे। प्रेमकी प्राप्तिका तो मुझे अधिकार ही नहीं। मेरा तो अधिकार बस जलनेका है। जलता ही रहूँ! शेष प्रभुकृपा।

(२)

विविध प्रश्नोंके उत्तर

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपके कृपापत्र यथासमय मिल गये थे।

आपका पहला प्रश्न है—ईश्वरकी शरणमें जाना कैसे बनता है, इसका उत्तर है कि सब प्रकारसे अपने सर्वस्वको तन, मन, धन, कामना, वासना, बुद्धि, अहंकार—सबको सब प्रकारसे परमात्मामें अर्पण कर देनेसे शरणागति बनती है। इसके प्रारम्भिक साधन हैं—१-भगवान्‌के अनुकूल ही सब कार्य (तन, मन, वाणीसे) करनेका दृढ़ निश्चय, २-भगवान्‌के प्रतिकूल समस्त कार्यों और भावोंका (तन,

मन, वाणीसे) सर्वथा त्याग, ३-भगवान्‌में ही परम विश्वासकी चेष्टा, ४-भगवान्‌को ही अपना एकमात्र रक्षक, प्रभु, प्रेमास्पद, गति, आश्रय, ध्येय और लक्ष्य मानना, ५-भगवान्‌के लिये ही सब कार्य करना, ६-सब कार्योंके होनेमें अपने पुरुषार्थको कुछ भी न मानकर भगवान्‌की ही शक्तिके द्वारा होते हुए समझना और ७-सब कुछ भगवान्‌के अर्पण करनेकी चेष्टा करना।

इस प्रकार अभ्यास करते-करते चार भाव हृदयमें प्रकट होते हैं और उन्हींके अनुसार क्रिया होने लगती है। वे चार हैं—१-भगवान्‌का परम प्रेमके साथ निरन्तर चिन्तन और तज्जन्य परमानन्दका पल-पलमें अनुभव, २-भगवान्‌के अनुकूल ही सब कार्य करनेका स्वभाव, ३-भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें (सुख-दु:ख, हानि-लाभ—सबमें) परमानन्द और ४-सर्वथा निष्कामभाव यानी कामनाका बिलकुल अभाव। इसी अवस्थामें परम शान्ति—शाश्वती शान्ति मिलती है। यह परमोच्च दशा है। इस अवस्थामें उस आधारमें स्थित होकर भगवान् ही लीला करते हैं।

प्रश्नका दूसरा भाग है—तीव्रतर वैराग्य आदिके द्वारा शाश्वती शान्ति मिल जानेपर भी अवश्य होनेवाले प्रारब्ध कर्मके मिटानेकी यदि कोई युक्ति होती तो राजा नल, धर्मावतार युधिष्ठिर और मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इत्यादि समर्थ पुरुष राज्यसे भ्रष्ट होकर क्यों वन-वन फिरकर अनन्त दु:ख उठाते? अत: शाश्वती शान्तिवाले ज्ञानीका भी प्रारब्ध कर्म नहीं मिट सकता, ऐसा श्रुति कहती है। तब शाश्वती शान्ति मिलना-न-मिलना एक-सा हो गया। अतएव तत्त्व-ज्ञानसे यथार्थ शान्ति मिलनेपर भी प्रारब्ध कर्मद्वारा उस शान्तिमें विघ्न हो जाता है या प्रारब्ध कर्मसे उसमें कोई विघ्न नहीं होता? यदि नहीं होता तो फिर ऐसा पुरुष प्रारब्ध कर्म कैसे भोगता है?

इस प्रश्नके उत्तरमें सबसे पहले तो यह बात कहनी है कि—

अवश्यम्भाविभावानां प्रतिकारो भवेद्यदि।
तदा दु:खे न लिप्येरन् नलरामयुधिष्ठिरा:॥

यह श्लोक केवल कर्मकी प्रबलता दिखलानेके लिये ही है। वैसे तो इस श्लोकका सिद्धान्त सर्वथा माननेयोग्य नहीं है; क्योंकि इसमें नल और युधिष्ठिरके साथ ही भगवान् श्रीरामका नाम लिया गया है। यह सिद्धान्त सर्वथा स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌का अवतार किसी कर्मफलसे नहीं होता। हम लोगोंके देहधारणमें—जन्ममें जैसे प्रारब्ध कारण है, वैसे भगवान्‌के जन्ममें नहीं है, वे तो अपनी लीलासे ही जन्म धारण करते हैं। वास्तवमें वह जन्म ही नहीं है। ऐसी बात नहीं है कि वह परम मंगल-विग्रह पहले नहीं था, अब माताके उदरमें रजवीर्यके संयोगसे बन गया। वह तो नित्य है और समय-समयपर अपनी लीलासे ही प्रकट होता है। यह प्राकट्य ही उनका जन्म है और फिर लीलाके अनन्तर अन्तर्धान हो जाना ही उनका देहावसान कहा जाता है। वस्तुत: वे जन्म-मृत्युसे रहित हैं। काल-कर्मसे अतीत हैं।

वे स्वयं कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४।६)

मैं सर्वथा अविनाशीस्वरूप और सर्वथा अजन्मा होते हुए ही तथा सब ब्रह्माण्डोंका परम ईश्वर होते हुए ही अपनी प्रकृतिके द्वारा अपनी योगमायासे—अपनी लीलासे—प्रकट होता हूँ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरा जन्म और कर्म दिव्य है और जो पुरुष इस जन्मकर्मके तत्त्वको जान लेता है, वह देहत्यागके अनन्तर दूसरे जन्मको न प्राप्त होकर मुझको ही प्राप्त होता है।

जिनके जन्मकर्मके तत्त्वको जान लेनेसे ही अपुनर्भव (मोक्ष) मिल जाता है, उन भगवान्‌को प्रारब्ध कर्मवश वनमें बाध्य होकर कष्ट सहन करना पड़ा—यह कहना एक प्रकारसे भूल ही प्रकट करना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका युवराजपदपर प्रतिष्ठित न होकर वनमें जाना उनकी दिव्यलीला ही थी। किसी प्रारब्धका भोग नहीं। रहे नल और युधिष्ठिर, सो यदि ये महानुभाव तत्त्वज्ञानी पुरुष थे, तब तो वनमें रहनेपर भी इन्हें वास्तवमें कोई अशान्ति नहीं हुई और यदि तत्त्वज्ञानतक नहीं पहुँचे थे तो यथायोग्य अशान्ति होनेमें कोई आश्चर्य नहीं। इन दोनोंमें युधिष्ठिरका दर्जा नलसे ऊँचा प्रतीत होता है। कुछ भी हो, इस श्लोकको प्रमाण मानकर शाश्वती शान्तिमें विघ्न मानना सर्वथा अप्रासंगिक है। इतनी बात अवश्य सत्य है कि प्रारब्ध कर्मका प्रतीकार नहीं हो सकता।

संचितका नाश हो जाता है। क्रियमाण भी अहंभावका अभाव तथा सहज निष्कामभाव होनेके कारण भूँजे हुए बीजकी भाँति फल उत्पन्न नहीं कर सकता, परंतु प्रारब्धका नाश भोग हुए बिना नहीं हो सकता। किसी प्रबल नवीन कर्मके तत्काल संचितमेंसे प्रारब्ध बन जानेके कारण फलदानोन्मुख प्रारब्धका प्रवाह रुक सकता है, परंतु मिट नहीं सकता। यह सत्य होनेपर भी तत्त्वज्ञानीकी शाश्वती शान्तिसे इसका क्या सरोकार है! कर्मोंका अस्तित्व ही अज्ञानमें है, अज्ञानका सर्वथा नाश हुए बिना तत्त्वज्ञानकी या शाश्वती शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती और शाश्वती शान्तिमें अज्ञान नहीं रहता, अतएव शाश्वती शान्तिको प्राप्त आनन्दमय पुरुषमें एक सम ब्रह्मकी अखण्ड सत्ताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह जाता। ऐसी अवस्थामें शरीरमें होनेवाले भोगोंसे उसकी नित्यैकशान्तिमें कोई बाधा नहीं आती। वह सर्वदा, सर्वथा और सर्वत्र सम होता है। सुख-दुःख, मानापमान, जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, प्रवृत्ति-निवृत्ति, हर्ष-शोक, शीत-उष्ण किसी भी द्वन्द्वमें वह विषम नहीं देखता। वह एकमात्र ब्रह्मको ही जानता है, ब्रह्ममें ही रहता है और ब्रह्म ही बन जाता है। ऐसी अवस्थामें न तो जगत्की दृष्टिसे होनेवाला भारी-से-भारी दुःख उसे विचलित कर सकता है और न जगत्की दृष्टिसे प्रतीत होनेवाला परम सुख ही उसे सुखके विकारसे क्षुब्ध कर सकता है। वह सदा सम, अचल, कूटस्थ, स्वरूपस्थित रहता है। इसी बातको समझानेके लिये भगवान्ने जहाँ-जहाँपर गीतामें तत्त्वज्ञानी पुरुषोंके लक्षण बतलाये हैं, वहाँ-वहाँ समतापर बड़ा जोर दिया है। इसीको प्रधान लक्षण बतलाया है, देखिये गीता अध्याय २ श्लोक ५६, ५७; अ० ५। १८, १९; अ० ६। २९, ३०, ३१; अ० १२। १३, १७, १८, १९; अ० १४। २२, २४, २५ आदि-आदि। शाश्वती शान्तिको प्राप्त पुरुषकी शान्ति वह होती है जो सर्वोच्च है, जो किसी कालमें किसी भी कारणसे घटती नहीं, नष्ट नहीं होती। वह नित्य है, सनातन है, अचल है, आनन्दमयी है, सत् है, सहज है, अकल है और अनिर्वचनीय है। बस, वह परमात्माका स्वरूप ही है। जो शान्ति किसी शारीरिक स्थितिके कारण विचलित होती है, बदलती है या नष्ट होती है, वह यथार्थमें शान्ति ही नहीं है, वह विषयप्राप्तिजनित क्षणिक सुखस्वप्नसे प्राप्त होनेवाली चित्तकी अचंचलता है, जो दूसरे ही क्षण नवीन कामनाके जाग्रत् होते ही नष्ट हो जाती है। भक्तकी दृष्टिसे कहा जाय तो भी यही बात है। भक्त सुख और दुःख दोनोंमें अपने भगवान्‌की मूर्ति देखता है, वह अपने भगवान्‌को कभी बिना पहचाने नहीं रहता। 'वज्रसे भी कठोर' और 'कुसुमसे भी कोमल' दोनोंमें ही वह अपने प्रियतमको निरख-निरखकर उसकी विचित्र लीलाओंको देख-देखकर नित्य निरतिशय आनन्दमें निमग्न रहता है, उसकी उस आनन्दमयी शान्तिको नष्ट करनेकी किसमें सामर्थ्य है? भगवान् कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

उस परम लाभके प्राप्त हो जानेपर उससे अधिक अन्य कोई भी लाभ नहीं जँचता और उस अवस्थामें स्थित पुरुष बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता; क्योंकि वह सर्वत्र सर्वदा अपने हरिको ही देखता है। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मुझसे कभी अदृश्य नहीं होता। ऐसी अवस्थामें यही सिद्धान्त मानना चाहिये कि तत्त्वज्ञानी शाश्वती शान्तिको प्राप्त पुरुषके लिये कोई कर्म रहता ही नहीं। प्रारब्धसे शरीर रहता है, परंतु उसमें अहंता और कर्ता-भोक्ता भाववाले किसी धर्मीका अभाव होनेसे क्रियामात्र होती है, वस्तुतः उसको कोई भोगता नहीं। उसके कर्मोंके सारे बन्धन टूट जाते हैं। कर्मोंका समस्त बोझ उसके सिरसे उतर जाता है। प्रारब्धके शेष हो जानेपर शरीर भी छूट जाता है।

अब एक प्रश्न आपका यह है कि गीता अध्याय २। ६० में जो यह कहा गया है कि प्रमथनकारिणी इन्द्रियाँ विपश्चित् पुरुषके मनको भी बलात् हर लेती हैं, वह विपश्चित् पुरुष शाश्वती शान्तिको प्राप्त पुरुष है या अन्य? इसका उत्तर एक तरहसे ऊपर आ चुका है, थोड़े शब्दोंमें यह पुनः समझ लीजिये कि शाश्वती शान्तिको प्राप्त पुरुष ब्रह्ममें—भगवान्‌के स्वरूपमें नित्य एकत्वरूपसे अचल रहता है। वह चलायमान होता ही नहीं। यहाँ विपश्चित् शब्दसे बुद्धिमान् पुरुष समझना चाहिये। जो बहुत बड़ा बुद्धिमान् तो है, परंतु भगवत्प्राप्त नहीं है, उसकी बुद्धि यदि मनके अधीन हुई रहे तो उसके मनको इन्द्रियाँ जबरदस्ती खींच लेती हैं। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६६, शक १९३१, सन् २००९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा अहोरात्र	गुरु	श्रवण दिनमें १। ३७ तक	६ अगस्त	कुम्भराशि रात्रि २। ४५ बजेसे, पंचक रात्रि २। ४५ से।
प्रतिपदा प्रात: ७ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें ३। ५५ तक	७ ''	अशून्यशयनव्रत।
द्वितीया दिनमें ८। २८ तक	शनि	शतभिषा सायं ५। ५० तक	८ ''	भद्रा रात्रिमें ८। ५८ बजेसे।
तृतीया '' ९। २८ तक	रवि	पूर्वाभाद्रपद रात्रिमें ७। २१ तक	९ ''	भद्रा दिनमें ९। २८ तक, मीनराशि दिनमें १२। ५९ से, कज्जली तृतीया, बहुलाव्रत, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ८। २३ से।
चतुर्थी '' १०। ०१ तक	सोम	उत्तराभाद्रपद रात्रिमें ८। २१ तक	१० ''	मूल प्रारम्भ रात्रि ८। २१ बजेसे।
पंचमी '' १०। ०३ तक	मंगल	रेवती '' ८। ५० तक	११ ''	मेषराशि रात्रि ८। ५० से, पंचक समाप्त रात्रि ८। ५० बजे, चन्द्रषष्ठी।
षष्ठी '' ९। ३५ तक	बुध	अश्विनी रात्रिमें ८। ५१ तक	१२ ''	भद्रा दिनमें ९। ३५ से रात्रि ९। ०५ तक, हलषष्ठीव्रत (ललही छठ) मूल समाप्त ८। ५१ बजे।
सप्तमी '' ८। ३६ तक	गुरु	भरणी '' ८। २३ तक	१३ ''	वृषराशि रात्रि २। ११ से, श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत।
अष्टमी प्रात: ७। १४ तक नवमी रात्रिशेष ५। ३० तक	शुक्र	कृत्तिका '' ७। ३६ तक	१४ ''	गोकुलाष्टमी।
दशमी रात्रिमें ३। २६ तक	शनि	रोहिणी सायं ६। २८ तक	१५ ''	भद्रा दिनमें ३। ३७ से रात्रि ३। २६ तक। उदयव्यापिनी रोहिणी, स्वतन्त्रतादिवस।
एकादशी '' १। १२ तक	रवि	मृगशिरा '' ५। ०४ तक	१६ ''	मिथुनराशि प्रात: ५। ४७ से, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी '' १०। ४८ तक	सोम	आर्द्रा दिनमें ३। ३० तक	१७ ''	मघा, सिंहमें सूर्यकी संक्रान्ति दिनमें १। ०२ से।
त्रयोदशी '' ८। २० तक	मंगल	पुनर्वसु '' १। ५१ तक	१८ ''	भद्रा रात्रि ८। २० से, कर्कराशि दिनमें ८। १६ से, सौरभाद्रपद मासारम्भ, भौम प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ५। ५३ तक	बुध	पुष्य '' १२। ११ तक	१९ ''	भद्रा दिनमें ७। ०७ बजेतक, अघोरचतुर्दशी, मूल प्रारम्भ दिन १२। ११ से।
अमावस्या दिन ३। ३२ तक	गुरु	अश्लेषा '' १०। ३६ तक	२० ''	सिंहराशि दिनमें १०। ३६ से, कुशोत्पाटनी अमावास्या।

सं० २०६६, शक १९३१, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १। २० बजेतक	शुक्र	मघा दिनमें ९। ०९ तक	२१ अगस्त	मूल ९। ०९ बजेतक।
द्वितीया '' ११। २५ तक	शनि	पू० फा० '' ७। ५७ तक	२२ ''	कन्याराशि दिनमें १। ४४ बजेसे।
तृतीया '' ९। ४९ तक	रवि	उ० फा० '' ७। ०६ तक	२३ ''	भद्रा रात्रि ९। १२ बजेसे, हरितालिकाव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध, राष्ट्रिय भाद्रपदमासारम्भ।
चतुर्थी '' ८। ३५ तक	सोम	हस्त प्रात: ६। ३३ तक	२४ ''	भद्रा दिनमें ८। ३५ तक, तुलाराशि सायं ६। ३० से, ऋषिपंचमीव्रत।
पंचमी '' ७। ४९ तक	मंगल	चित्रा '' ६। २७ तक	२५ ''	× × × ×
षष्ठी '' ७। ३० तक	बुध	स्वाती '' ६। ४९ तक	२६ ''	वृश्चिकराशि रात्रि १। ३० से, लोलार्कषष्ठी, कार्तिकेय दर्शन।
सप्तमी '' ७। ४३ तक	गुरु	विशाखा दिनमें ७। ४३ तक	२७ ''	भद्रा दिनमें ७। ४३ बजेसे रात्रिमें ८। ०६ तक, सन्तानसप्तमी, राधाष्टमीव्रत।
अष्टमी '' ८। ३० तक	शुक्र	अनुराधा '' ९। ०७ तक	२८ ''	मूल दिनमें ९। ०७ से।
नवमी '' ९। ४२ तक	शनि	ज्येष्ठा '' १०। ५८ तक	२९ ''	धनुराशि दिनमें १०। ५८ से।
दशमी '' ११। १८ तक	रवि	मूल '' १। १० तक	३० ''	मूल दिनमें १। १० तक, भद्रा दिनमें १२। १५ से, महारविवारव्रत।
एकादशी '' १। १२ तक	सोम	पूर्वाषाढ़ '' ३। ३९ तक	३१ ''	भद्रा दिनमें १। १२ तक, मकरराशि रात्रिमें १०। १९ से पद्मा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी '' ३। १६ तक	मंगल	उत्तराषाढ़ सायं ६। १७ तक	१ सितम्बर	भौमप्रदोषव्रत, श्रीवामनद्वादशीव्रत।
त्रयोदशी सायं ५। १७ तक	बुध	श्रवण रात्रिमें ८। ५१ तक	२ ''	× × × ×
चतुर्दशी रात्रिमें ७। ०६ तक	गुरु	धनिष्ठा '' ११। १२ तक	३ ''	भद्रा रात्रिमें ७। ०६ से, कुम्भराशि दिनमें १०। ०२ से, पंचक प्रारम्भ दिनमें १०। ०२ से, अनन्तचतुर्दशीव्रत।
पूर्णिमा '' ८। ३६ तक	शुक्र	शतभिषा '' १। १३ तक	४ ''	भद्रा दिनमें ७। ५२ तक, स्नान-दान-व्रतकी पूर्णिमा, महालयारम्भ।

कृपानुभूति

(१)

संकटमोचन कृपानिधान

१९ फरवरी १९७७ ई० शनिवार शामको ५ बजेकी बात है। मेरी छः वर्षीय पुत्री रेखाके हाथमें एक तागा बँधा था। वह उस तागेको चाकूसे काटना चाहती थी। दैवयोगसे तागा न कटकर झटकेके साथ चाकू आँखके अन्दर चला गया। उसे मेडिकल कालेज ले जाया गया। वहाँ डॉक्टरने कहा कि इसकी आँख निकालनी पड़ेगी; क्योंकि आँखके टुकड़े हो गये हैं। मैंने डॉक्टरसे प्रार्थना की कि आप कृपया इसकी आँख न निकालें। अभी आप आपरेशन ही कर दें, आगे भगवान् मालिक हैं। मेरी अनुनय-विनयका डॉक्टरपर प्रभाव पड़ा। उन्हें दया आयी और उन्होंने दो डॉक्टरोंको बुलाकर बच्चीको बेहोश करके आपरेशनकी आवश्यक व्यवस्था करनेको कहा। रातमें ९-३० बजे आपरेशन आरम्भ हुआ और १०-३० बजे रेखा बेहोशीकी हालतमें आपरेशन थियेटरसे बाहर लायी गयी। २० फरवरीको सायंकाल उसको होश आया। आठ दिन बाद जब डॉक्टरने उसकी आँखकी पट्टी खोलकर देखा तो कहा कि भगवान्की कृपासे आँख ठीक है, किंतु रोशनी आना असम्भव है।

मेरे इष्टदेव परमपूज्य पवनकुमार श्रीहनुमान्जी महाराज हैं। मैं विगत २२ वर्षोंसे मेंहदीपुर-बालाजी (जयपुर—राजस्थान) प्रायः बराबर जाता हूँ। वहाँके हनुमान्जी महाराजके अनेक चमत्कार और अद्भुत लीलाएँ मुझे प्रत्यक्ष अनुभूत हैं। उस समय मेरे कुछ मित्र होलीके उत्सवपर बालाजी जा रहे थे। मैंने उनसे प्रसाद चढ़ाने तथा जो प्रसाद वहाँसे मिले, वह लाकर मुझे देनेके लिये कहा। जब प्रसाद आया तो मैंने वह बच्चीको खिला दिया। २५ दिन बाद उसे मेडिकल कालेजसे छुट्टी मिल गयी। पश्चात् मैंने अलीगढ़, सीतापुर एवं दिल्लीके डॉक्टरोंको दिखाया, उन्होंने बताया कि आँखमें मोतियाबिन्द उतर आया है। अतः फिर आपरेशन कराना पड़ेगा। दूसरा आपरेशन मेरठमें २०-४-७७ को हुआ। दिनांक २२-४-७७ को आँखकी पट्टी खोली गयी। आँखकी स्थिति अच्छी नहीं थी। फिर भी मैंने डॉक्टरसे कहा कि इसकी आँख अवश्य ठीक हो जायगी। मुझे अपने परम कृपालु बालाजी-(हनुमान्जी)-की कृपापर पूर्ण विश्वास है। भगवान् नारायण एवं हनुमान्जी महाराजसे मैं नित्य नियमित निरन्तर यह प्रार्थना करता रहता था कि इसकी आँखकी ज्योति पूर्ववत् लौट आये। उस रात ९ बजे भगवत्-चिन्तन करते हुए मैं चिन्तामग्न-सा बैठा था, तभी अचानक मेरी नाकसे लगभग ५०० ग्राम रक्त निकल गया और मैं सम्भवतः कमजोरी तथा मानसिक चिन्ताके कारण २४ घंटेके लिये बेहोश हो गया। उसी बेहोशीमें मेरे मनमें न जाने कैसे यह भावना आयी कि मेंहदीपुर जाकर बालाजीके मन्दिरमें बच्चीके निमित्त चाँदीका नेत्र चढ़ाना चाहिये एवं ३ किलोमीटर पैदल चलकर ही मन्दिरमें दर्शनार्थ जाना चाहिये। होश आने और कुछ मनोदशा स्वस्थ होनेपर मैंने अपने मनमें यह दृढ़ संकल्प लिया कि पुत्रीकी आँखमें रोशनी आनेपर मैं ३ किलोमीटरकी दूरी साष्टांग प्रणाम करते हुए ही तय करके मन्दिर पहुँचकर नेत्र चढ़ाऊँगा।

२३ मईको हमलोग सब मिलकर लगभग एक सौ आदमी बालाजी पहुँचे। अन्य सबलोग तो पैदल कीर्तन करते हुए चल रहे थे, किंतु मैंने अपने पूर्व निश्चयानुसार साष्टांग प्रणाम करते हुए मन्दिरके लिये प्रस्थान किया। इसका अनुसरण मेरी पत्नी तथा मेरे छोटे भाईने भी किया। मन्दिर पहुँचकर सर्वप्रथम हमने श्रीबालाजीका सविधि पूजन किया एवं अपने संकल्पके अनुसार रजत-नेत्र चढ़ाये। पश्चात् वहाँके महंतसे मिले और सब बातें मैंने उन्हें संक्षेपमें बता दीं। मेरी बात सुनकर उन्होंने मुझे इन शब्दोंमें सान्त्वना दी—'श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और दृढ़ आस्थासे क्या सम्भव नहीं हो सकता? श्रीबालाजी (हनुमान्जी) महाराजकी कृपासे बच्चीकी आँख बिलकुल ठीक हो जाय, इसमें सन्देहकी बात ही क्या है? बालाजीकी कृपापर सतत विश्वास रखो, उन्हींका ध्यान और स्मरण करो!'

बालाजी धाम (मेंहदीपुर)-से लौटनेके थोड़े ही दिनों बादसे पुत्रीकी आँखमें शनैः-शनैः लाभ होने लगा था। उन्हींकी कृपासे उसकी आँख बिलकुल ठीक हो गयी। उसमें रोशनी आ गयी। पुत्रीने श्रीबालाजीके मन्दिर पहुँचकर यह कहा था कि 'भगवान्की शरणमें आनेसे सबको सहारा मिलता है।' मन्दिरमें आनेपर उसे 'इस ओर चलो, उस ओर मुड़ो' का अदृश्य संकेत बराबर मिलता था। यह उसने स्वयं अनुभव किया और बादमें गद्गद कण्ठसे हम सबको भी बतलाया।

आर्तजनोंकी श्रद्धा, विश्वास और प्रेमपूर्ण पुकार संकटमोचन हनुमान्जी महाराज अवश्य सुनते हैं। यह

घटना इसका ज्वलन्त उदाहरण है, किंतु आवश्यकता है अडिग विश्वास, दृढ़ निष्ठा, अटूट आस्था तथा भक्तिभावयुक्त पूर्ण निर्भरता की। फिर वे सँभाल लेते हैं। श्रीहनुमान्‌जीके विषयमें यह सत्य कितना सटीक है कि—

संकट ते हनुमान छुड़ावैं । मन क्रम बचन ध्यान जो लावैं॥

मन-कर्म-वचन—तीनोंके योगसे की हुई श्रीहनुमान्‌जीकी सकाम भक्ति आज भी प्रायः सर्वत्र फलदायी देखी जाती है, फिर यदि उनकी निष्काम भक्तिद्वारा मानवजीवनका कल्याण हो जाय तो इसमें सन्देह ही क्या है? यह सर्वथा विश्वसनीय तथ्य है—

मंगल-मूरति मारुत-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी । हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥
जय सियाराम जय जय हनुमान्।
संकट मोचन कृपानिधान!

—जयन्तीप्रसाद माहेश्वरी

(२)
सरयूमैयाकी कृपा

वर्ष २००६ ई०के श्रावण मासके अन्तिम सप्ताहकी बात है, मेरे बड़े जीजाजी एवं बहनने अयोध्यामें भागवत-सप्ताह-पारायणका आयोजन करवाया था, जिसमें हम सभी पारिवारिक सम्बन्धियोंको शामिल होना था। तदनुसार दि० ३०.७.२००६ ई० को मैं और मेरी पत्नी दुमकासे रवाना होकर ३१.७.२००६ ई०को अयोध्या पहुँचे, जो 'किशोरीजी' की महती कृपाका ही परिणाम था, अन्यथा उनकी कृपाके बिना उस पावन भूमिका स्पर्श सबको सुलभ नहीं होता। १ अगस्तको हमने सरयूजीमें स्नान किया और कुछ खास-खास जगहोंका दर्शन-लाभ लिया; क्योंकि २ अगस्तसे भागवत-कथा प्रारम्भ होनी थी। भागवत-कथाके मध्य ही एकादशीकी पूर्व रात्रिमें मेरा विचार एक बार पुनः सरयू-स्नानका हुआ। मैं एकादशीकी सुबह-सुबह अकेला ही स्नान करने जाना चाह रहा था, लेकिन पत्नीने जिद की कि वह भी पुनः स्नानको जायगी। हमलोग सभी जानकी-महल-ट्रस्टके मोहन-भवनमें ठहरे थे। श्रावणीमेला एवं १ अगस्तका अनुभव बता रहा था कि घाटके किनारे सूखे वस्त्रोंकी रखवाली करना एवं गीले वस्त्रोंको बदलना दुष्कर होगा। अतः मैंने और मेरी पत्नीने निश्चय किया कि सरयू-स्नान करके गीले वस्त्रोंमें ही रिक्शेसे लौट आयेंगे और अपने निवासपर आकर कपड़े बदल लेंगे। अल्प एवं जरूरी कपड़ोंमें हमदोनों रिक्शेसे घाटके किनारे गये। मैंने अपनी हाफपैंटकी पॉकेटमें कुछ रेजकारी दीनोंको देनेहेतु, रिक्शा-खर्च एवं अपने रूमकी चाभी (जिसमें माँके अलग रूमकी चाभी भी थी) एक पॉलीथीनमें लपेटकर रख ली थी। मेरी पत्नीने पानीके बहावको देखते हुए मेरा हाथ पकड़े हुए ही सरयूजीमें प्रवेश किया एवं कमर-नाभितक पानीमें हमलोग डुबकी लगाने लगे। काफी बहाव था, पाँव जम नहीं रहा था एवं पानीमें आगे खतरेको देखते हुए बाँस-बल्लीसे रोक बना दी गयी थी। हमलोग उस बाँसतक पहुँचकर पूरे बहावमें नहा रहे थे। कब मेरी पाकेटसे पॉलीथीनकी थैली बाहर निकली, पता नहीं चला। डुबकी पूरीकर मैंने पाकेट टटोला तो सन्न रह गया। हे भगवती! यह क्या हुआ! पैसा गया सो गया, बिना चाभीके अपना रूम कैसे खोलेंगे? दो-दो ताले बरबाद होंगे, जो लोग नहीं जानते हैं, वे भी जान जायेंगे एवं हमलोग हँसीका पात्र बनेंगे। ऐसा सोचते-सोचते २-४ मिनट बीत गये। निराश होकर हमलोगोंने बोतलमें सरयूजीका जल भरा। ४-५ फीटके दायरेमें मैंने पैरसे नीचे काफी टटोला। एक जगह कुछ आभास-सा हुआ, झुककर उठानेसे नाकमें पानी भर-भर आता था, किसी तरह उठाया तो एक सखुआ या पीपलका-सा पत्ता हाथ आया। मैं पुनः प्रयास करता रहा एवं मुँहसे यही बार-बार हमदोनों कहते रहे कि हे सरयूमैया! आज तो काफी शर्मिन्दगी उठानी पड़ेगी एवं जीजाजीसे भी बात सुननी पड़ेगी। पुनः पैरके पास कुछ कागज-जैसा लगा, झुककर बड़ी मुश्किलसे उठाया तो मारे खुशीके मैं चौंक पड़ा। जो पॉलीथीनकी थैली चाभी एवं रुपये-पैसोंके साथ गिरी थी, वही हाथ आ गयी। यह साक्षात् 'सरयूमैया' का ही चमत्कार था; अन्यथा उतने तेज प्रवाहमें गिरी हुई चीज २-३ फुटके दायरेमें मिलनी कैसे सम्भव थी!

हम दोनोंका कोई काम नहीं बिगड़ा। सरयूमैयाकी कृपाकी चर्चा करते हुए हमलोग रिक्शेसे वापस अपने निवासपर आये। अगर सरयूमैयाने कृपा न की होती तो पता नहीं हम लोगोंकी क्या दशा होती! उस दिनसे नहाते समय मनसे यही आवाज आती है—

सरयू मैया की जय, चारों भैया की जय,
खेल खिलैया की जय।
जय-जय अवध धाम, जय-जय श्रीराम॥

—राधेश्याम केडिया

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारी हो तो ऐसी हो

इस घोर कलिकालमें ईमानदारीकी घटना बड़े आश्चर्य तथा कौतूहलकी बात मानी जाती है। ईमानदारीकी एक अनुकरणीय घटना अगस्त ७८ ई०की है, जो इस प्रकार है—

मोदीनगर वस्त्रोद्योगके वीविंगविभागके फिटर—श्रीकुमुदकुमार बनर्जीने सहजरूपमें अचानक प्राप्त हुए पौने तीन लाख रुपये उनके वास्तविक मालिकको सौंपकर असाधारण ईमानदारीका परिचय दिया। रक्षाबन्धनपर दिल्लीके एक कपड़ा-व्यापारीका मुनीम मालिकके व्यावसायिक कार्यवश तथा अपनी बहनसे राखी बँधवानेके लिये मोदीनगर गया हुआ था। जब वह अपनी बहनसे राखी बँधवाकर अपने मालिकके पास दिल्ली वापस लौटा तो पौने तीन लाख रुपयोंकी थैली जो उसके पास थी, अपने साथमें न पाकर स्तब्ध रह गया। मालिकको जब थैली गायब होनेकी बात बतायी गयी तो उसे थैली खोनेका तनिक भी विश्वास न हुआ। मालिकने इसे मुनीमकी धोखेबाजीसे पौने तीन लाख रुपये हजम कर जानेकी बात समझी। व्यापारी और मुनीम जब दोनों रुपयोंकी खोजमें दौड़े हुए मोदीनगर आये तो श्रीकुमुदकुमार बनर्जीने खोये हुए नोटोंके सही नम्बर बतानेपर और यह विश्वास हो जानेपर कि वास्तवमें पौने तीन लाख रुपये इन्हींके हैं, रुपयोंकी वह बृहद्राशि उन्हें ज्यों-की-त्यों लौटा दी। बनर्जी महाशयको उक्त धनराशि उनके मिल-एरियामें ही किसी एक स्थानपर चमड़ेके एक बैगमें पड़ी हुई मिली थी।

ज्ञात हुआ है कि दिल्लीके उक्त व्यापारीने श्रीबनर्जीकी इस ईमानदारीसे प्रसन्न और प्रभावित होकर उन्हें दस हजार रुपया पुरस्कार-स्वरूप देनेकी पेशकश की तो उन्होंने यह कहा कि—'जो प्रसन्नता और आनन्द मुझे दस हजारका पुरस्कार लेकर प्राप्त न होगा, वह मुझे इस समय आपके रुपये ज्यों-के-त्यों मिल जानेपर हो रहा है। आप मुझे उस दुर्लभ आनन्द तथा सन्तोषसे क्यों विरत करना चाहते हैं? मैं आपके इस सद्भावके लिये आभारी हूँ। मुझे क्षमा करें।'

ईमानदारीकी इस सत्य घटनासे जनसाधारणको शिक्षा लेनी चाहिये। इस बहुमूल्य मानवजीवनको बेईमानीसे बचाकर ईमानदार बनाना चाहिये। हमें यह न भूलना चाहिये कि चाहे कोई कितना ही भजन-पूजन, योग-यज्ञ, जप-तप करे और चाहे जितना कोई पुण्य-दान, तीर्थाटन आदि करे; किंतु जबतक हम अपना जीवन ईमानदारीका नहीं बनायेंगे तबतक हमारा कल्याण तीन कालमें भी नहीं हो सकता। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी यह चौपाई तथा दोहा आत्मसुधारके लिये मननीय तथा सदा स्मरण रखनेयोग्य है—

जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
दो०—परधन को मिट्टी गिने पर त्रिय मातु समान।
इतने में हरि ना मिलें तुलसीदास जमान॥

वस्तुतः प्रातःस्मरणीय सन्तकी इस लोककल्याणकारी वाणीको ईमानदारीके साथ जीवनमें उतार लेनेमें ही हमारा तथा सम्पूर्ण देशका भी कल्याण है।—**भक्त श्रीरामशरणदासजी**

(२)

गीतापाठका प्रत्यक्ष चमत्कार

घटना आषाढ़ कृष्णपक्ष सं० २०६५ वि०की है। मेरे घरमें अशान्तिके बादल छाये हुए थे, ससुरालवालोंने मुझसे कहा कि गोठ मोगलोद गाँवमें किरण पितराणीकी शरणमें जानेसे समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ मैं उनके पास गया। वहाँ भाव आता है। ऐसी मान्यता है कि उनके शरीरमें देवता आते हैं, मैंने भी उनसे दुःखोंका कारण और उनसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा। उन्होंने बताया कि आपको घरकी तथा बाहरकी पाँच-सात प्रेतात्माएँ दुःख दे रही हैं। सात दिनतक पितराणीके नामकी अगरबत्ती करना, घरमें गोमूत्र छिड़कना तथा आठवें दिन पुनः आना। मैंने वह सब किया और पुनः आठवें दिन मैं पत्नीके साथ वहाँ गया। पितराणीने घर

बुलवानेका दस हजार रुपयेका खर्च बताया। यह सुनकर मैं बहुत निराश हो गया। घर आकर मैंने माताजीको सब बातें बतलायीं। माताजीने भी वह काम करवानेको कहा। मेरी पत्नीने पीहरसे रुपये उधार लाकर देनेको कहा। किंतु मेरे लिये तो एक हजार रुपये भी अधिक होते हैं। इतने रुपये मैं कहाँसे लाता! मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। हारकर मैं प्रभुकी शरणमें गया, मुझे लगा कि मेरा दु:ख सुननेवाले मेरे परमात्मा ही हैं। वे चाहे जो करेंगे। मैं प्रभुके सामने दो घण्टे रोता रहा और उनसे यह प्रार्थना करता रहा कि प्रभो! मैं आपकी शरणमें हूँ, इस संकटसे मुक्तिका मार्ग बताइये। फिर मैं गीताजीके उस श्लोकका पाठ करने लगा जिसमें किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुनने भगवान्‌के शरणागत होकर अपने संकटसे मुक्ति दिलानेका तथा कल्याणका उपाय पूछा था। वह श्लोक इस प्रकार है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

मैं तीन दिनतक इस श्लोकका जप करता रहा। जपके फलस्वरूप आषाढ़ कृष्ण चतुर्दशीको मुझे यह अन्त:प्रेरणा मिली कि तुम गीताजीका पाठ करो, गीतासे बड़ा कुछ नहीं है। मैंने गीताजीका पाठ तथा हनुमान्‌जीके द्वादश नामों[1]का जप तथा हरे राममन्त्र[2]का जप भी शुरू कर दिया।

मेरी पत्नीने कहा—क्या है गीताके पाठमें? इतने समयसे पाठ करनेपर भी दु:ख दूर नहीं हुए। मैंने कहा 'तू भोली है। तू गीता-पाठके महत्त्वको नहीं जानती। भगवान्‌को मेरा काम करना पड़ेगा।' मेरा निश्चय अटल था। भगवान्‌की प्रेरणासे एक समय भोजन करते हुए सात दिनतक मैंने गीताका पाठ नित्य किया और प्रभुसे मृत आत्माओंकी मुक्ति तथा गृहशान्तिकी प्रार्थना की और फिर गीताजीकी कृपा हुई कि मुझे प्रेतात्मासे मुक्ति मिल गयी तथा घरमें शान्तिका वातावरण हो गया, इस प्रकार गीतापाठसे मुझे समस्त दु:खोंसे छुटकारा प्राप्त हुआ।—**वासुदेव शर्मा**

(३)

भगवान्‌ने आपदा अपने ऊपर ले ली

मैंने पैरामिलिट्री फोर्समें वरिष्ठ पदपर करीब २१ वर्ष नौकरी करनेके पश्चात् स्वेच्छासे सेवामुक्ति ली। मुझे बचपनसे ही ईश्वरमें बड़ा विश्वास है, छोटेसे आलेमें सिन्दूरसे चित्र बना रोज दीपक जला ध्यान करता। फोर्समें आनेके बाद कुम्हारघाट (त्रिपुरा)-में मन्दिर-निर्माण करवाकर श्रीकृष्णकी मूर्ति स्थापित की। साथ ही घरके एक कमरेको पूर्णरूपसे खालीकर श्रीकृष्णकी मूर्ति १९८२ ई०में बनवाकर स्थापित की।

घटना २७ अगस्त २००६ ई०की है। मन्दिरके एक भागमें इनवर्टर एवं दो बड़ी बैटरियाँ रखी थीं। मुझमें एक कमी है या अच्छाई; मैं कोई भी चीज टूटी, खराब या गन्दगी नहीं देखना चाहता। उस दिन अचानक बैटरी चार्ज होनी बन्द हो गयी थी। मैं सारे दिन परेशान रहा। रात १० बजे सोनेका प्रयत्न किया, पर इनवर्टर खराब होनेके कारण नींद नहीं आयी। आखिर मन्दिरमें जाकर दोनों बैटरीके तार हटाये, ऊपरसे साफ किया और बैटरीपर झुके-झुके मैं तार जोड़ रहा था कि अचानक भयंकर विस्फोट हुआ। सारे मन्दिरमें तेजाब एवं बैटरीके टुकड़े-ही-टुकड़े फैल गये। बैटरीके छोटे-छोटे टुकड़े छतकी दीवारपर जाकर धँस गये। मैं एकदम स्तब्ध-सा रह गया। तभी मेरी पत्नी भी वहाँ आयीं और यह देख हमदोनोंके आश्चर्यकी सीमा न रही कि मुझे जरा-सी खरोंच भी नहीं आयी थी। बात आयी-गयी हो गयी। दीवालीसे पहले सफाईके दौरान मैंने दीवारपर टँगी श्रीकृष्णभगवान्‌की फोटो जैसे ही उतारी कि करीब ५०-५० ग्रामकी मात्रामें बैटरीके कई टुकड़े नीचे आकर गिरे और मैं बाल-बाल बच गया। इस बारकी घटनासे मैं यह सोचकर बरबस ही रोने लगा कि भगवान्‌ने ऐसी आपदा अपने ऊपर ले ली और मुझे बचा लिया। उस दिनसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा और भक्ति और भी बढ़ गयी। तभीसे मैं हमेशा कोई भी काम करता रहूँ या यात्रा करता रहूँ, उनका नाम जपता रहता हूँ।—**एम०पी० यादव**

---

१. हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः। रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः। लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥ (आनन्दरामायण)

२. हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(४)

स्वप्न-दर्शन

विगत सितम्बर महीनेके अन्तिम सप्ताहकी घटना है। मेरी पत्नी मनोरमा दरवाजेपर मच्छरदानी लगाकर खाटपर सोयी हुई थी। मैं भी बरामदेमें ही चौकीपर मच्छरदानी लगाकर सोया था। भयंकर अँधेरी रात थी। वृद्धावस्थाके परिणामस्वरूप और कानकी बीमारीके कारण मैं थोड़ा कम सुनता हूँ। इसके लिये यदा-कदा हियरिंग एडका भी व्यवहार करता हूँ, परंतु सोनेके पूर्व उसे रख दिया करता हूँ। अर्धरात्रिकी वेलामें सुषुप्तावस्थामें ही मेरी पत्नीने बच्चेके रोनेकी आवाज सुनी। वह गहरी नींदमें सोयी थी। रोनेकी आवाज सुनकर उसकी नींद टूट गयी तो उसने दो बच्चोंके रोनेकी आवाजें सुनीं। एक आवाजका अनुभव दरवाजेके पास गेटपर बँधी बाँसकी जाफरीके पास किया और दूसरी आवाज आँगनकी तरफ जानेवाले रास्तेकी तरफ सुनायी पड़ने लगी। रोनेकी दोनों आवाजें सुननेके बाद उसे काफी डर लगने लगा।

वह पढ़ी-लिखी तो नहीं है, किंतु हनुमानचालीसाकी जो दो-चार पंक्तियाँ जानती है, उनका बार-बार जप करने लगी। पुनः उसने हाथ जोड़कर हनुमान्‌जीसे मदद करनेकी गुहार लगायी। उसके ऐसा करनेसे अचानक दोनों तरफके बच्चोंका रोना बन्द हो गया और उसे हनुमान्‌जी-जैसी एक विशालकाय छाया जाफरीके पास दिखायी पड़ी। यह देखकर उसको काफी साहस हो गया और उसने मच्छरदानीसे निकलकर छायाकी ओर बढ़नेका प्रयास किया। अचानक वह छाया गायब हो गयी और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वह पुनः मच्छरदानीके भीतर बैठ गयी। कुछ देरमें ही वह पुनः सो गयी। सुबह उसने मुझे यह कहानी सुनायी तो मैं बहुत रोमांचित हो उठा।

इस घटनाके करीब एक महीने बाद एक दिन उसने जलावन निकालनेहेतु जलावनवाले घरमें जैसे ही प्रवेश किया वैसे ही सामने करीब छः फीटका एक भयंकर गेहुँअन साँप फन फैलाये उसकी ओर देख रहा था। डरकर उसने हल्ला करना चाहा तो पीछेसे आवाज सुनायी पड़ी, 'तुम डरो मत, वह तुमको कुछ नहीं करेगा।' उसने पीछे पलटकर बोलनेवालेको देखना चाहा, परंतु वहाँ कोई नहीं था और आवाज भी बिलकुल अनजान-सी थी। आवाज देनेवाली उस अदृश्य शक्तिको उसने बजरंगबली ही समझा; क्योंकि वह हनुमान्‌जीका जप बड़े मनोयोगपूर्वक किया करती है।

गत १२ नवम्बरकी रात्रिमें करीब नौ बजे जब वह बाड़ीकी ओर जा रही थी, उसी जगह घर बनानेहेतु खपड़ा उजाड़कर रखा हुआ था। खपड़ेसे करीब १० फीटकी दूरीपर एक भयंकर नाग कुण्डली मारकर पड़ा हुआ था। उस जगह वृक्ष आदि रहनेके कारण चन्द्रमाका प्रकाश नहीं पहुँच रहा था। उसने उसे बैठी हुई बिल्ली समझा और हट-हट करके डाँटा। सुनते ही नागराज धीरे-धीरे खपड़ेकी ढेरीकी ओर चला गया। जाते वक्त उसने देखा कि बिल्ली नहीं, बल्कि एक विशाल साँप है। उस रात स्वप्नमें उसने एक साँपको देखा जो कह रहा था कि अभी तुम्हारा समय पूरा नहीं हुआ है। तुमने हट-हट कहकर डाँटा, इसलिये मैंने तुम्हारे मनमें डर पैदा कर दिया था। जब तुम्हारा समय पूरा होगा तभी तुमको ले जाऊँगा।

इस तरहकी घटना उसके लिये नयी नहीं है। उसे कभी-न-कभी इस तरह छाया दिखायी पड़ जाती है। कभी दुर्गा माँ लाल साड़ी पहने उसके सिरहानेमें आकर खड़ी हो जाती हैं, कभी तुलसीका पौधा प्रकट हो जाता है, तो कभी भगवान् शंकर स्वप्नमें दिखायी दे जाते हैं। उसमें सात्त्विकता, धार्मिकता एवं सरलता इतनी कूट-कूटकर भरी हुई है कि इन सभी घटनाओंको झुठलाया नहीं जा सकता।

वास्तवमें जीवनमें ऐसे दृश्य कभी स्वप्नमें तथा कभी जाग्रत्‌में भी देखनेको मिल जाते हैं और उनका प्रभाव तथा परिणाम भी देखनेको मिलता है। स्वप्न बीती घटनाओं तथा भावी घटनाओंके संकेत भी देते हैं। इससे कभी सुखानुभूति तथा कभी दुःखानुभूति होती है। पवित्र आचरण तथा सदाचारमय जीवन-शैली अपनानेसे स्वप्नगत दुर्दृश्य नहीं दिखलायी देते और सत्संगतिसे जीवन सात्त्विक तथा सुखमय हो जाता है। अतः भगवत्कृपाका आश्रय लेना चाहिये। इससे दुःस्वप्न भी सुस्वप्न हो जाता है—

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते॥

महादेवीका अवलम्बन ले लेनेपर सब विघ्न तथा भयंकर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्योंद्वारा देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ स्वप्नमें परिवर्तित हो जाता है।

—रामकुमार मण्डल

मनन करने योग्य

'किरत करो, नाम जपो एवं वंड के छको'

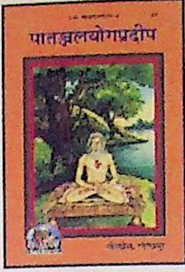
श्रीगुरुनानकदेवजीने प्रभु-सिमरनके साथ ही साथ पुण्य कर्म एवं सत्यव्यवहार करनेका उपदेश दिया है। वे कहते हैं कि अपनी कमाईका कुछ हिस्सा जरूरतमन्दोंके सहायतार्थ लगाना ही श्रेष्ठ कर्म है। उन्होंने जगत्‌को मुख्य तीन उपदेश दिये—*'किरत करो, नाम जपो एवं वंड के छको'* अर्थात् शुभ कर्म करो, प्रभु-सिमरन करो एवं जो मिले उसे मिल-बाँटकर खाओ।

एक समयकी बात है, गुरुजीकी महिमा सुनकर एक क्षत्रिय उनके दर्शन करने आया। गुरुजी सिख-संगतको उपदेश दे रहे थे कि 'मेरी-मेरी' करके प्रभु-सिमरनको भुलाकर यह जीव माया इकट्ठी करता है, परंतु आश्चर्य है कि अन्तमें वह सब कुछ यहीं छोड़ जाता है। वह क्षत्रिय चार करोड़की सम्पत्तिका स्वामी था, परंतु स्वभावसे बहुत कंजूस था। न वह स्वयं उसका उपभोग करता था और न ही उस मायासे कुछ पुण्य ही करता था। जब उसने गुरुजीके मुखसे यह उपदेश सुना तो उसका हृदय काँप उठा। उसने गुरुजीके चरण पकड़ लिये और कहा—महाराज! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो। गुरुजीने कहा—मित्र! एक क्षत्रिय तेरे-जैसा ही धनी था, उसने जो कष्ट पाया था, वह तुम्हें बताता हूँ। उसके पास जो धन था, वह हमेशा उसके ऊपर बैठा रहता था। किसीको निकट नहीं आने देता था, न ही किसी आये-गयेको वह खिलाता था और न ही स्वयं खाता था। उसका अन्त समय आनेपर यमराजने आदेश दिया कि इसे केशोंसे पकड़कर जमीनपर पटककर मारो। तब उसने यमदूतोंसे कहा—मेरे पास बहुत सम्पत्ति है, उसका चतुर्थ भाग ले लो और मुझे छोड़ दो। यह सुनकर दूतोंने उसे फिर बहुत मारा। उसने कहा—मुझे मत मारो, तुम आधा धन ले लो। यमदूतोंने कहा—हम धन लेने नहीं आये, हम तुम्हें लेने आये हैं। कंजूस क्षत्रियने कहा—अच्छा तुम मेरी सम्पत्तिके तीन हिस्से ले लो और मुझे छोड़ दो। तब भी यमदूत उसे मारते रहे। अन्तमें उसने कहा—अच्छा! तुम सारा धन ले लो, परंतु मुझे छोड़ दो। यमदूत बोले—तू पागल है, अरे! यदि तीन लोकोंकी सम्पत्ति भी मिले तो भी हमें स्वीकार नहीं है। हम तो तुम्हें लेकर ही जायँगे। तब उस धनीने कहा—अच्छा, ईश्वरके लिये मुझे इस धनसे अर्थात् लक्ष्मीसे दो-चार बातें करने दो। तब ईश्वरका वास्ता मिलनेके कारण यमदूतोंने उसे लक्ष्मीके पास ले जाकर खड़ा कर दिया। उसने कहा—हे लक्ष्मी! मैंने सारी उम्र तुम्हारी बहुत सेवा की और सबसे अधिक तुमसे प्यार किया है और दिन-रात तुम्हारी रक्षा करता रहा। मनमें आशा थी कि अन्त समयमें तुम मेरे काम आओगी और इस कष्टमें सहायक बनोगी। हे लक्ष्मी! मैंने स्वयंको भूखा रखकर भी तुम्हें सँभालकर रखा है। मैं तुमको सबसे अधिक मानता रहा हूँ, पर अब मैं देख रहा हूँ कि तुम उसी स्थानपर पड़ी हो, दो-चार कदम तो मेरे साथ चलो। लक्ष्मीने कहा—अधर्मी जीव! तूने मेरे धनसे कोई सत्कर्म नहीं किया, न मुझे किसी मित्र-सम्बन्धीके हितार्थ ही लगाया और न ही मुझको गुरुकी सेवामें अर्पण किया। मेरेद्वारा तुमने कोई पुण्य कर्म भी नहीं किया, किसी निर्धनको कपड़ा-भोजनतक नहीं दिया, धर्मशाला एवं कुआँ भी नहीं बनवाया, इतना ही नहीं, किसी जरूरतमंदकी सहायता भी नहीं की। अगर तू मुझे इन भले कामोंमें लगाता, तो तुझे वैकुण्ठ ले चलती, जहाँ तुझे अपार सुख मिलता। लेकिन तुमने कुछ भी सत्कर्म नहीं किया, अत: अब अपने कर्मोंका फल भोगो। इतना कहकर लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी और यमदूत उसे मारते-पीटते धर्मराजके समीप ले गये। धर्मराजने उसे घोर नरकमें डाल दिया।

गुरुजीने कहा—जो मायाको पुण्य कर्मोंमें नहीं लगायेगा, उसका भी यही हाल होगा। यह सुनकर वह क्षत्रिय भयभीत हो गया। गुरुजीने कहा—मित्र! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अपनी लक्ष्मी सत्कर्ममें लगाओ, धर्मशाला बनाओ, कुआँ खुदवाओ, सन्तोंकी सेवा करो, लंगर लगाओ, अतिथियोंकी सेवा करो और साथ ही साथ ईश्वर-स्मरण एवं कीर्तन करो, इससे निश्चित ही तुम्हारा कल्याण होगा। जिसने धन एकत्रकर कोई पुण्य कर्म नहीं किया, उसे नरक ही मिलेगा। यह लक्ष्मी मोहिनी है, छलरूप है। इसका सदुपयोग सत्कर्ममें लगानेसे ही है। जिससे परलोकमें भी सुख प्राप्त होता है। सत्संग, साधु-संग और पुण्य कर्म करनेसे यह मित्र बनती है, नहीं तो यह महान् कष्टकी जननी बन जाती है, यह किसीके साथ कभी नहीं जाती।

—श्रीमाधवदासजी ममतानी

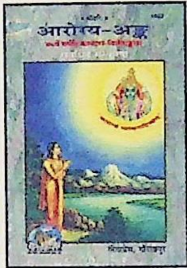
गीताप्रेससे प्रकाशित योग एवं आरोग्यकी पुस्तकें



पातञ्जलयोगप्रदीप—सचित्र, सजिल्द, (कोड 47) ग्रन्थाकार— श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। इसकी व्याख्या सरल तथा सुगम है। भूमिकारूपमें षड्दर्शनसमन्वय तथा तत्त्वविश्लेषण प्रणालीसे यह ग्रन्थ और भी उपयोगी हो गया है। मूल्य रु० १२०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।



योगाङ्क—सचित्र, सजिल्द, (कोड 616) ग्रन्थाकार— योग आध्यात्मिक एवं अतीन्द्रिय विकासका अनुपम मार्ग है। योग ही ज्ञानका सर्वोत्तम प्रणाली है। इस ग्रन्थमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा उसके अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। योगके साधकों तथा अन्वेषकोंके लिये यह पुस्तक स्वाध्याय एवं संग्रह करनेयोग्य है। मूल्य रु० १००, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।



आरोग्य-अङ्क—सचित्र, सजिल्द, (कोड 1592) ग्रन्थाकार— विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों, घरेलू औषधियों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंके इस विशेषाङ्कमें साधारण अङ्कोंमें प्रकाशित लेखों एवं नवीन सामग्री समाहित होनेके कारण यह पाठकोंके लिये विशेष उपयोगी है। आरोग्य-सूत्रोंकी तो यह अनुपम कुंजी है। इसमें आयुतत्त्व-मीमांसा, आहार-विहार, यम-नियम, आचार-विचार, निरोग रहनेके लिये प्राकृतिक प्रयोग आदिका विस्तारसे विवेचन किया गया है। मूल्य रु० १३०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर उपलब्ध—तुलसी-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
105	विनय-पत्रिका	२८	108	कवितावली	१२	112	हनुमानबाहुक	३
106	गीतावली	२५	110	श्रीकृष्ण-गीतावली	५	113	पार्वती-मंगल	३
107	दोहावली	१२	111	जानकी-मंगल	४	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३

एक साथ सम्पूर्ण सेट मँगवानेके लिये डाक एवं पैकिंगखर्चसहित रु० १२५ भेजें। (श्रीतुलसी-जयन्ती २८ जुलाई मंगलवारको है।)

पूर्वप्रकाशित—परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी कल्याणकारी पुस्तकें—

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३	1747	भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?	७
1631	भगवान् कैसे मिलें ?	६	1790	जन्म-मरणसे छुटकारा	७
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	६	1791	त्यागकी महिमा	७
1666	कल्याण कैसे हो ?	८	1792	शान्तिका उपाय	१०
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६	1837	अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो ?	६

उपर्युक्त दस पुस्तकोंका पूरा सेट—पुस्तक मूल्य, डाक एवं पैकिंगखर्चसहित रु० १०० का मनीआर्डर/ड्राफ्ट भेजकर मँगवा सकते हैं।

१५वाँ दिल्ली-पुस्तक-मेला—२००९ इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें (दिनांक २९ अगस्तसे ६ सितम्बरतक) आयोजित पुस्तक-मेलेमें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

500-750 | 2500-2800 | 5000-5500 | 7000-7500 | 9000-9500 | 11000-1150
60 100 100 100 100 100
59821 ✓
प्र०ति० २०-६-२००९
600
75283

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/09

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE NO.-WPP/GR/-03/2009